MĀNASĀGARA'S
KĀNHADA KATHĪYĀRĀ RĪ CAUPAĪ

[*A Middle Rajasthani Text of the Oldest Period—1690AD.*]

Text critically edited with Introduction, notes and variants
BY

Dr. Satya Ranjan Banerjee
M A (Sanskrit-Prakrit) ;
M A. (Comparative Philology) ; **D. Phil.** (Cal)
Adhyapak, Sanskrit College, Calcutta , Quondam Professor of Sanskrit Language and Literature, Maharaja Manindra Chandra College and Vivekananda College, Calcutta , Ranaghat College, Ranaghat ; and J. K. College, Purulia , Former Research Fellow, Asiatic Society, Calcutta, and Research Fellow, and Research Scholar, Calcutta University, Calcutta ; and Secretary, Sanskrit Sahitya Parishat, Calcutta, and Vice-President, West Bengal Provincial Anubrat Samiti, Calcutta etc etc

With a Foreword
BY

Dr Sukumar Sen, M. A , P. R. S., Ph D , F. A S
Khaira Professor of Indian Linguistics and Phonetics, and Head of the Department of Comparative Philology, Calcutta University, Calcutta

And also with a Parichaya
BY

Sri Srichand Rampuria, B. Com , B L., Advocate

Publisher :
PRAJNAYATANA
15, Noormal Lohia Lane,
CALCUTTA-7

Calcutta, May, 1964

Publisher :
PRAJNAYATANA,
15, Noormal Lohia Lane,
CALCUTTA-7

●

First Edition :
May, 1964
ASHADHA, 2021. V S.

4459

●

Number : 500

●

Pages : 105

●

Price : Rs. 2/-

●

Printed by :
SHRI SHOBHACHAND SURANA
RAPHAEL ART PRESS,
31, Burtolla Street, Calcutta-7
Phone : { 33-7928
33-9198

मानसागर विरचित

शील विषये

कान्हड़ कठोयारा री चौपई

(मूल, भूमिका एवं टिप्पणी सहित)

सम्पादक

डॉ० सत्यरञ्जन वन्द्योपाध्याय, एम्. ए., डि. फिल,

हिन्दी अनुवादक

श्री भँवरलाल नाहटा

मुखबन्ध लेखक

प्रोफेसर श्री सुकुमार सेन, एम्.ए., पि.आर.एस., पि. एच. डि.,

कलकत्ता विश्वविद्यालय

परिचय लेखक

श्री श्रीचन्द रामपुरिया, बि. कॉम्., बि. एल., एडभोकेट

प्रकाशक

प्रज्ञायतन

१५, नूरमल लोहिया लेन,

कलकत्ता-७

कलकत्ता, मई, १९६४

प्रकाशक :

प्रज्ञायतन

१५, नूरमल लोहिया लेन,

कलकत्ता-७

•

प्रथम संस्करण :

मई १९६४,

वैशाख २०२१

•

प्रति संख्या : ५००

•

पृष्ठ-सख्या : १०५

•

मुल्य · दो रुपये

•

मुद्रक ·

श्री शोभाचन्द सुराना

रेफिल आर्ट प्रेस,

३१, बडतल्ला स्ट्रीट, कलकत्ता-७

फोन : ३३-७९२३, ३३-६१९८

समप्पणं

जोयणिट्ठाण सत्थन्नाण

अणुव्वय-पइट्ठायाण आयरियाण

सिरि तुलसीणं

पोत्थअस्स इमस्स समप्पणं अत्थु ॥

इअ सिरि मच्चरंजण-चंदुवज्झायस्स ॥

CONTENTS

★

University Colleges of Arts and Commerce
Asutosh Building, Calcutta.

FOREWORD

KANHADA KATHIYARA RI CHAUPAI by Manasagara is now for the first time presented in a critical edition with an introduction and a translation in Hindi The author belongs to Mewar and the poem was completed in Samvat 1747 (= 1690 A. D.). The poem is interesting not only for the contents (where a popular tale, although given a good religious turn, has not lost human appeal) but for the language too which gives us some unusual words. For this piece of a good research work Shri Satyaranjan Banerjee is to be congratulated and I have great pleasure in introducing this interesting piece of old Rajasthani poetry to the reading public

28-2-64. **Sukumar Sen**

परिचय

प्राध्यापक डॉ० सत्यरंजन बनर्जी, जो संस्कृत-प्राकृत एव तुलनात्मक भाषातत्व में एम० ए० है और हाल ही मे कलकत्ता विश्वविद्यालय द्वारा जैन दर्शन पर डाक्टरेट की उपाधि से विभूषित किये गये है, प्राकृत भाषा और जैन दर्शन के अध्ययन में स्वाभाविक रुचि रखते है। यहां तक कि आरम्भ से ही उन्होंने अपने अध्ययन और शोध खोज का क्षेत्र यही कर रखा है। उनके शोधपूर्ण विद्वत्ता-भरे लेख और निबंध प्रसिद्ध और लब्ध-प्रतिष्ठित पत्रिकाओ में समय-समय पर प्रकाशित होते रहे है, जिन्होंने विद्वानो का ध्यान जैन साहित्य के अध्ययन और अन्वेषण की ओर आकर्षित किया है।

उनके कुछ निबन्ध इस प्रकार है :

1. An Apparent Anomaly in Hemacandra's Prakrit Grammar, paper read at the AIOC held at Delhi, 1957 Summaries of Papers p 86.

2. Sayanacarya - krta - Rigveda-bhasyopakramanika—text edited with notes, Calcutta, 1958

3. A note on the Remarks of Pischel on the Illustrative Gathas of Hemacandra's Desinamamala Proc & Trans. All India Oriental Conference, Annamalainagar 1958 pp. 274-279 (Paper read at the 18th Session of AIOC).

4. Samksipta-sariya-Prakrita-pada-tika by Narayana Vidyavinoda — not a commentary on Kramadisvara's Prakrit Grammar, paper read at AIOC held at Bhuvaneswara, 1959, Summaries of Papers. p. 72.

5. A note on Folk-etymology, Ranaghat College, Magazine, Ranaghat, 1959.

6. An outline of Prakrit Literature in Bengali—Sucana, September and October, 1959.

7. Raksasa Kavya of Ravideva—text edited with introduction and Bengali Translation, Calcutta, 1959.

8. Hemacandra Sutra Vimarsa (in Sanskrit)—Sanskrit Sahitya Parishat Patrika, Vol—42, No. 6, October, 1959 pp. 93-94

9. Sanskrit "ardra" and its cognates in Prakrit, Bulletin of the Philological Society of Calcutta, Vol—I, No. 2 1960 pp 30-31.

10 A brief History of Prakrit and Apabhrams'a Literature—contributed to Sanskrit Sahityer Ruparekha, edited by Dr Biman Bhattacharya, Vidyodaya Library, Calcutta, 1960.

11. The Characteristics of Prakrit in the Visnudharmottara-purana, Bulletin of the Philological Society of Calcutta, Vol—II. 1961, pp. 124-130.

12. A study on Manasagara's Kanhada Caupai—A Jaina Text in old Rajasthani paper read at AIOC held at Srinagar, Kashmir, 1961. Summaries of Papers p. 106.

13. On the Etymology of Prakrit, **Rukkha** and **Vaccha** meaning tree.—Bulletin of the Philological Society of Calcutta, Vol—III Calcutta, 1962. pp. 13-16.

14 Asokasya Silalipih (in Sanskrit)—Sanskrit Sahitya Parishat Patrika, Vol—45, No. 2 June, pp. 18-23.

15. Mudrita Pustake Prathama Bangla Aksar—Bandhu, Saradiya number, 1369 B S. (=1962 A D.) pp. 48-49.

16. Grantha Vimarsa — a review of the History of Sanskrit College (in Sanskrit) — Sanskrit Sahitya Parishat Patrika, Vol—45, No. 8, December, 1962, pp, 127 28.

17. Folk-etymology in Sanskrit Literature, Folk-lore, Vol—IV, No. 5. May, 1963, pp. 153-156.

18. A Skeleton Grammar of Prakrit attributed to Jiva Goswami, Bulletin of the Philological Society of Calcutta, Vol IV, 1963, pp 10-31

19. Jaina Dharmer Godar Katha—Bandhu, Saradiya number, 1370 B. S. (=1963 A. D.), pp. 79-83

20. Vasavadatta O Sakuntala—Bharatvarsa, Puja Numbar, Kartik, 1370 B. S. (=1963 A D.) Vol–51, part I, No. 5, pp. 730-740.

21. Tattva Katha—a preface in Bengali of a book Tattva-katha written by Shri Narendra Nath Gupta, Calcutta, 1963

22 A Note on the two schools of Prakrit Grammarians (with a Bibliography on Prakrit Grammar), Jaina Bharati, Research Volume, presented before the 26th International Congress of Orientalists held at New Delhi, 1964, pp. 32-41

23 Candideva's Prakrit - dipika, A Commentary on Kramadisvara's Prakrit Grammar—identical with the vrtti of Jumaranandi, Paper read at the 26th International Congress of Orientalists held at New Delhi, 1964 Summaries of Papers, pp. 57-58.

24 Bharatiya Sarvajanina Bhasa, Bharatavarsa 1370, B.S. (=1964 A. D), Vol. 51, Part 2, No. 4, pp 467-69.

25-34 Jaina articles contributed to Bharata Kosha—Akalanka, Anga, Anantanath Anekantavada, Apabhramsa Sahitya, Abhayadeva Suri, Udayaprabha Suri, Uma Swami, Rishabha deva, KundaKunda

35. An edition of Vararuci's Prakrita - Prakasa with a newly discovered Manuscripts so long unknown—is

being published partly in the Sanskrit Sahitya Parishat Patrika, Vol. 46, No. 10, 1964-onwards.

36. A Review on Vishvanatha's Sahityadarpana, Visva Bharati Patrika, Vol 20, No. 4 1964, pp. 422-33.

37. Manasagar's Kanhada Kathiyara Ri Caupai—A Middle Rajasthani Text of the oldest period—1690 A. D. —Text critically edited with introduction, variants, notes etc Prajnayatana, Calcutta, 1964.

प्रस्तुत छोटी-सी कृति, उन्ही के हाथों द्वारा सम्पादित होकर सामने आ रही है। यह एक शील-कथा है। कान्हड़ कटियारा था। उसने एक जैन मुनि से यह व्रत ग्रहण किया कि पूर्णिमा के दिन वह परनारी का परिहार रखेगा। एक दिन चन्दन की भारी ले वह बेचने के लिए बाजार में पहुँचा। उस चन्दन की भारी को साधारण काष्ठ मान उस भोले-भाले कठियारा ने उसके दो पैसे चाहे। वहां के प्रसिद्ध श्रावक श्रीपति सेठ का नौकर उसे सेठ के घर ले गया और सेठ को भारी के दो पैसे देने के लिए कहा। सेठ ने देखा भारी साधारण काष्ठ की नही पर चन्दन की है। उसकी महक से सारा घर भर गया। सेठ ने सोचा—भोला कठियारा अपनी वस्तु के मूल्य को न भी समझे तो भी सत्य की माग है कि उसे वस्तु का उचित मूल्य दिया जाय। सेठ ने कान्हड़ को पाँच सौ सौनइये दिये। कान्हड़ खुशी-खुशी लौटा। नगर के मध्य से जाते हुए वह गणिकावास से गुजरा। वहाँ उसे देख विट लोग उसका मजाक उडाने लगे। यह सौखीन कठियारा यहाँ रात बिताने आया है ! कान्हड के पास सौनइये तो थे ही, विटों की बात उसे चुभ गई। वह बोला—इस स्थान मे जो आवेगा वह एक रात तो रहेगा ही। इसी अवसर पर एक अप्सरा के सदृश सुंदर गणिका अपने घर के मुख द्वार पर खडी हुई। कनकलता पर दृष्टि पड़ते ही कान्हड मुग्ध हो गया। कान्हड मे सौनइये उसे दे दिये। कनकलता अत्यन्त प्रसन्न हुई। उसने नापित को बुला, कान्हड़ की हजामत करवाई। उसके तेल की मालिश करवाई। सरस आहार का भोजन कराया। लौंग, सुपारी की मनुहार की। सुन्दर वस्त्र पहनने को दिये। और प्रसिद्ध गवैये सरस राग आलापने

लगे। उधर कनकलता ने भी अपूर्व शृंगार किया। सुन्दर शय्या सजाई। कान्हड ने शयनागार मे प्रवेश किया। वहाँ चन्द्रमा की स्वच्छ चांदनी का प्रवेश हो रहा था। कान्हड ने जाली मे से झाँककर देखा तो आकाश मे पूर्ण चन्द्र हँस रहा था। कान्हड ने देखा पूर्णिमा है। उसे अपना व्रत स्मरण हो आया। उसने मन-ही-मन सकल्प किया—पूर्णिमा के दिन मुझे परनारी का त्याग है। इस मर्यादा का लोप हरगिज नही करूँगा। वह बहाना कर बाहर निकला। अपने पुराने कपडे पहने और वहाँ से चलता बना। वेश्या बाट जोहती ही रही पर कान्हड नहीं लौटा। प्रातः हो आया। वेश्या सोचने लगी—कान्हड ने मेरे साथ रात नही बितायी फिर उसके सौनइये मै कैसे रख सकती हूँ? मै पर-द्रव्य लेशमात्र भी नही रखूगी। पसीने की कमाई ही मै रख सकती हू। खरी कमाई के अतिरिक्त पर-द्रव्य रखने के नियम को मैं हरगिज निभाऊँगी। वेश्याएँ इकट्ठी हुई। कनकलता राजा से जाकर मिली और पाँच सौ सौनइये सौपती हुई बोली—"मेरे घर कान्हड कठियारा आया। वह पाँच सौ स्वर्ण मुद्राएँ छोडकर बिना रात बिताये ही चला गया। यह द्रव्य निर्माल्य होने से मुझे अग्राह्य है ऐसा मेरा नियम है। सबकी साक्षी से यह निधि आपको सौपती हूँ। ऐसी निधि का स्वामी राजा ही होता है।" राजा ने घोषणा करवायी। कान्हड प्रगट हुआ। उसने कहा—यह द्रव्य मै छोड गया था। राजा ने सारी बात कठियारा से सुनी। श्रीपति सेठ को भी बुला भेजा। परिषद् के सामने राजा बोला—गणिका कनकलता ने ये पाँच सौ सौनइये मुझे दिये पर इनसे मुझे कोई प्रयोजन नही। यह खरी कमाई का संचय कठियारे का ही है।" राजा ने कठियारे को सौनइये दे दिये।

इसी अवसर वे जैन श्रमण पुनः उस नगरी मे पधारे। राजा ने पूछा—"यहाँ श्रीपति जैसा सेठ है, कनकलता जैसी वेश्या है, कान्हड जैसा कठियारा है और मुझ जैसा राजा। इनमें से कौन विशिष्ट व्यक्ति है?" श्रमण बोले—चारो ही महिमाशाली है। चारो ही चतुर और सुज्ञानी है। इनमें अधिक कान्हड है जिसने वेश्या के घर में स्थान पाकर भी अपने शील-व्रत की रक्षा की।" राजा ने कान्हड को मन्त्री रूप मे नियुक्त किया।

कान्हड़ ने श्रावक के बारह व्रत ग्रहण किये। बाद मे सब कुछ छोडकर वह महाव्रतधारी मुनि हुआ।

मुनि मानसागरजी रचित इस शीलकथा के कथानक का संक्षिप्त सार यही है। यह रचना सवत् १७४७ के चार्तुमास मे राजस्थान के पद्मावती नामक स्थान मे उक्त मुनिजी ने की।

इस कृति मे मुनि मानसागरजी ने अपनी गुरु परम्परा का परिचय इस प्रकार दिया है।

विजय प्रभ सूरि
(तप गच्छ गुरु)
|
विजय रत्न सूरि
|
विजय सागार उपाध्याय
|
जीत सागर गणि
|
मान सागर

भूमिका मे विद्वान सम्पादक ने उन प्रतियो का परिचय दे दिया है जिनके आधार पर से मूल पाठ का सम्पादन किया गया है। मूल पाठ का सम्पादन करते हुए पाठान्तरो की नोध कर दी गयी है। इस तरह इस छोटी-सी कृति का सम्पादन अत्यन्त परिश्रम और आधुनिकतम शैली से किया गया है।

भूमिका मे सम्पादक ने प्रस्तुत कथा के उद्गम आधार पर विचार करते हुए कथानक साहित्य का जो परिचय एक स्थान पर प्रस्तुत किया गया है वह बहुत महत्वपूर्ण है। इसी तरह सम्पादित पुस्तक की भाषा की विशेषता पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने भिन्न-भिन्न राजस्थानी भाषाओं के विकास और गुजराती और राजस्थानी भाषा के सम्पर्क पर विचार प्रगट किये हैं। अन्त मे राजस्थान के इतिहास, संस्कृति एवं राजस्थानी भाषा

सम्बन्धी प्रकाशित ग्रंथ-सूची और निबन्धों की एक तालिका भी दी है, जो अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी।

मूल-कृति का हिन्दी अनुवाद राजस्थानी साहित्य के मार्मिक विद्वान श्री भवरलालजी नाहटा ने किया, जिसे सम्पादक ने साथ में लगा दिया है। इससे मूल राजस्थानी को समझने मे साधारण पाठक को जो कठिनाई रहती वह काफी हद तक दूर हो गयी है। हिन्दी अनुवाद में कुछ खटकने जैसी अशुद्धियां दृष्टिगत होती हैं। सम्भवतः उनका उद्गम प्रूफ-संशोधन की त्रुटि है। आशा है बाद के संस्करण मे इनका संशोधन हो पायगा।

सुहृद सत्यरंजन जी ने इस छोटी-सी कृति के सम्पादन में जो परिश्रम किया है वह जैन युवकों के लिए तो एक आदर्श ही उपस्थित करता है। जैन साहित्य और दर्शन की अधिक से अधिक सेवा की आशा रखता हुआ मैं प्रस्तुत कार्य के सुन्दर सम्पादन के लिए साधनाशील सत्यरंजन बाबू को हार्दिक बधाई देता हूँ।

श्रीचन्द रामपुरिया

१५, नूरमल लोहिया लेन,
कलकत्ता
१५-५-६४

PREFACE

" When I was a Research Scholar in the University of Calcutta, working under the guidance of Professor Dr. Sukumar Sen, M. A, P. R S., Ph. D, F. A. S., Khaira Professor of Indian Linguistics and Phonetics, and Head of the Department of Comparative Philology, University of Calcutta, I, as a student of Sanskrit, Pali, Prakrit, Apabhramsa and Indo-European Philology, took up the study of old Rajasthani Language which is an off-shoot of Old Indo-Aryan through Middle Indo-Aryan. The old Rajasthani Language has long been neglected after the premature demise of the Italian scholar L P. Tessitori ; and since then it is living in a realm of sad and doleful neglect. It is, therefore, at the suggestion of my revered **Acharya** Professor Sukumar Sen, who told me that an account of old Rajasthani Language would be helpful for the development of modern Indo-Aryan languages, that I began to study the language through the medium of a text, not yet critically edited, at the feet of my **Acharya** whose scholarly grasp, wondrous memory, bright intelligence and above all, unfathomable prodigious profundity of knowledge united with the most brilliant powers of strong imagination made me lean on him as an infalliable guide. The present text—**Kanhada Kathiara ri Chaupai**[1]—is an outcome of that impetus. I must owe a profound debt of gratitude to my **guru** who has also kindly agreed to write a foreword to my book, despite the multifarious calls on his valuable time. It is indeed well said—

---

1. In the last 21st All India Oriental Conference held at Srinagar, Kashmir, in 1961, I read a paper on this subject.

एकमप्यक्षरं यस्तु गुरुः शिष्ये निवेदयेत् ।
पृथिव्यां नास्ति तद्‌-द्रव्यं यद्‌-दत्वा सोऽनृणी भवेत् ॥

I must also record here my grateful and sincere acknowledgement of the immensely valuable suggestions and help for the improvement of the text, I received from Shri Pranabesh Sinha Roy, M A., Reader, Calcutta University, who is not only a linguistician, but also a linguist in the true sense of the term. His suggestions and advice to me, so ungrudgingly proffered whenever solicited, can hardly be expressed in words.

I must acknowledge with thanks the valuable suggestions I received from Shri Gopichand Chopra, B. A. who has kindly gone through my manuscript and helped me in giving his opinions on some points, particularly in the interpretation of the verse **Satarache** (159), which, after discussion, I have incorporated into the text. Shri Bhamwar Lal Nahta has helped me in all respects. He has brought one Ms for me from Bikaner (vide B) ; and the Hindi translation of this text has also been done by him. All these things have been done so spontaneously that words are not adequate to express my sincere gratitude to him.

Lastly, I must mention the name of Shri Srichand Rampuria, B. Com., B. L , Advocate, who has grudged neither time nor toil in his benign and generous help for the publication of this volume. I must confess frankly that this book would not have seen the light of the day had not Srichand Rampuriaji come forward with an earnest zeal to publish this work. I am really greatly indebted to him for undertaking the publication of this book. He has also written a kind note for me. How,

and in what lexicons of the world's tongues, shall I find words of adequate beauty to express my unredeemable debt of gratitude which I owe to him as a friend and a scholar ?

I take this liberty to dedicate this humble work to the revered Saint Acharya Shri Tulasi, the ninth teacher of the Terapanth sect, who teaches the Gospel of Love, Truth and Peace for the salvation of humanity, and who is the founder of the Anuvrata movement of the present day.

I shall fail in my duty if I do not mention the name of Pandit Prabhudatta Shastri, Sahityaratnakar, Prabhakar (P.U) who has kindly seen the proofs of the book. Shri Kishori Kant Mishra, manager Raphael Art Press, has also helped me in various ways. I am also grateful to those who have directly or indirectly helped me in this work.

It should be mentioned here that **diacritical** marks have not been used in the introduction, because the press does not possess these types, although the spellings printed here are according to the standard Roman alphabet. I must apologise for these defects which are beyond my control. I had also no control over some misprints and errors that had crept into this text. The readers are kindly requested to correct all these misprints and errors while reading.

In fine, I should say that if the text proves very profitable to the students interested in this branch of Neo-Indian Philology, I shall consider my labour well rewarded.

Calcutta,
21st. May, 1964. **Satya Ranjan Banerjee**

Introduction.

1. Critical apparatus and Text-constitution :—

(a) Description of Materials for the Text.

The present edition of the Kanhada-Caupai of the poet Manasagara is based on the following materials :—

A—This paper manuscript, written in Devanagari character, and containing 14 folios, belongs to the Asiatic Society's Government Collection (No. G 7297). It is written on both sides, the first and the last folio, however, are written on only one side. The ink, used for the body of the text, is black, but the verse numbers and some corrections made are written in red ink. This manuscript is complete, but in comparison with other mss , it seems to us that some interpolations, which have increased the number of the verses from 161 to 168, are found. As some corruptions and confusions are noticed in the manuscript, the copyist I think, has made a few corrections, here and there, which are sometimes quite sensible and sometimes not. The Ms. opens thus ·—श्रीबीतरागाय नमः। दूहा॥ पारसनाथ प्रण परमानन्द। दुखदोहगदूरैं हरैं अधिकवाधै आनन्द॥ The concluding portion runs thus :—इति श्रीसोलविषये कठियारा काण्हड़ चौपई संपूर्णः॥

B—This is a paper manuscript,[1] written in Devanagari character, and consisting of 7 folios. It

1. I have got this manuscript through the kindness of Shri Bhamwarlal Nahta of Calcutta.

belongs to Shri Abhaya-Jaina-Granthamala, Bikaner It bears the No. 3538. It is written on both sides excepting the first folio This manuscript is complete excepting a few folios of the middle which are lost (vide our No. 59 to 81) It is written in black ink, though marginal lines and number of verses are in red ink. The condition of this Ms is extremely good and presents, in some cases, a better type of reading It has some strong similarity with that of A The total number of the verses is161. It begins thus :—श्री गुरुभ्यो नमः ॥ पण्डित श्रीरामविजयगणि गुरुभ्यो नमः ॥ श्री जिनाय नमः ॥ अथ काण्हड कठीयारारी चोपई लिख्यते ॥ and the concluding portion is :—श्रीसीलविषय कठियारी काण्हड़ सपूर्णं । लिखण्ड श्रील सकर मध्ये स० १८४७ मिताजैव ॥

P—This is the printed text once published from the Saraswati Pustak Bhandar, Ratanpole, Ahmedabad. Neither any commentary nor any translation is given, but only the text which has been badly edited and corrected in many places and hence it seems to us that it has lost its original colour and quality This printed text, the editor of which is not given in the text, cannot claim to be critical, as the spirit of the language has been marred by the editor. The number of the verses of this printed text is 161 The year of publication is not known from the text, because it is not given there.

These three do not show anything like recensions, but belong to one and the same group or family ; on the contrary, they show a close relationship and represent identical recensions. The number of the verses agrees quite clearly, although the A has seven **verses more due to interpolations.**

Of all the three mentioned above, I usually follow the MSS. A and B, because of the fact that they are strikingly similar both in point of language and spirit. Our text has, sometimes, been rectified, where necessary, by the printed text.

As regards the authenticity of the text, nothing can be said. There are some occasional deviations from the recognised grammatical accuracies. The irregularities in syntax, obscurities in meaning and phonological and morphological peculiarites are also noticed in many places In some rare cases, some convenient emendations have tentatively been suggested in order to reach the genuine readings of the text, and some of them have been put in square brackets All these things can be allowed to remain when there is the agreement of the three.

(b) Numbering of the Verses.

The number of the verses of this text, as deducted from a careful comparison of the three, can be tabulated thus :—

Metres	Manuscripts.			Comments
	A.	B	P	
Duha	7	7	7	All the three have Savvagatha 32. But A has a wrong statement though it states Savvagatha 32. Evidently 7 are interpolations.
1 Dhala	11	11	11	
Duha	3	3	3	
2. Dhala	18 (=11+7)	11	11	

Duha	7	7	7	B has Savvagatha 51. Number is correct.
3. Dhala	12	12	12	
Duha	4	4	4	B has Savvagatha 112. Number is wrong. It should be 119.
4. Dhala	12	13	13	
Duha	6	6	6	
5. Dhala	14	14	14	
Duha	7	7	7	
6. Dhala } Duha }	24	17 } 7 } =24	17 } 7 } =24	
7. Dhala	13	12	12	B has Savvgatha 124. Number is wrong It should be 131.
Duha	3	3	3	A has Savvgatha 127. Number is wrong. It should be 134.
8. Dhala	14	14	14	
9. Dhala	13	13	13	
Total	168 (=161+7)	161	161	

2. *The Author, his date and other works*

From the text[1] itself we know that the name of the poet is Manasagara who belonged to the Tapa-gaccha family of Jaina monks and whose preceptors were like the following[2] :—

Vijaya-prabha Suri
|
Vijaya-ratna (Suri)
|
Jaya-sagara Upadhyaya
|
Jita-sagara
|
Mana-sagara (the poet)

Now, from the Tapa-gaccha Pattavali[3] we come to know that Jayasagara were his immediate ancestors and from the other[4], we again know that Vijaya-prabha Suri and Vijaya-ratna who flourished between 1675 to 1749 samvat also belonged to the same gaccha. From this it can be said that our poet Manasagara must be, at least, a remote descendent to Vijaya prabha Suri whom he mentioned in the text. No information of this author is available save and except his works and time has not even succeeded in keeping some traditions

Besides this text, our poet wrote another caupai[5] which he composed[6] in the samvat 1724 in the

1. Vide Nos. 18, 32, 51, 68, 88, 112, 13:, 148. 161. 2. Vide verses 157-159. 3 Vide, Pattavali Samuccaya—Ed by Muni Darshana Vijaya, Gujrat, 1933. P. 116. 4. Vide Visva Kosa (Vol. VII)—Ed. by Nagendranath Basu, 1303 B.S. P. 178. 5. Vide Jaina Gurjara poets (Second Part)—Ed. by M. D. Desai, Bombay 1931. PP 220-224 quoted in the Appendix. 6. Ibid. PP. 220-224.

country "Kudari",[1] in the reign of Vikramasenaraja[2] son of Vikramaditya, flourished in the samvat era 1724. His present work Kanhada-Caupai was also composed in the country Padmavati at Marwar at the time of performing the "Caturmasa" ceremony in the samvat 1747. This we find in the text in the following manner :—

सतर से तालिस समै, तिहा किधो चोमास ।
सदगुरुणा प्रसादथी, पूगी मनना आश ॥

This सतर सेतालिस समै[3] is evidently the samvat 1747 (=AD 1690) Therefore, our poet must have flourished between the year 1724 and 1747 Samvat.

3. The story of the text.

The present text "Kanhada Caupai" relates, by way of an illustration, the story of a layman who has become a Jaina monk in his later life, coming in contact with the Jaina Sadhus.

The text begins with the Salutation of the twenty-third Tirthankara, Parsvanatha, who is the dispeller of sorrows and sufferings. The author, then, describes in a nutshell, the results of a good and chaste life[1] which is, according to the Jaina doctrines, one of the important factors of spiritual life ; and in order to exemplify his statement, he has taken the story of a wood-cutter Kanhada by name[5].

In days of yore, there was a country, named Jambu, in the southern direction of which there was

---

1. Ibid, PP 220-224. 2. Ibid. PP. 220-224. 3. But P has the reading- सतरसे छेतालिस—both mean 1747. सतरश = Bengali सतरशत and छे stands for से, therefore, सेतालिस = सातचल्लिस ॥ 4 Verses 8-7. 5. Vereos 5-7.

another country Bharata (India) by name. In the eastern part of India, the country Ayodhya, famous for its pomp and glory, was situated[1]. There lived in that country a king, Kirtidhara, who was of unimpeachable character and was glorious and hospitable, and ruled his subjects justly and affectionately[2].

In the kingdom of Kirtidhara, the Jaina monks usually preached their doctrines and taught the layman and their disciples good lessons, so that they might lead a good and chaste life even in this mundane existence One day, while wandering from village to village, from town to town, a Jaina ascetic who was a man of encyclopaedic knowledge and who had controlled all his senses and who was also well-versed in the study of the mind of others, came to that country (Vinita i. e , Ayodhya) with his other retinues (Sadhus)[3] The king and his subjects went there for making obeisance to him, and waited in the exegetic hall (Vyakhya-Sabha) in order to hear good lessons from them for the aggrandizement of their mental and moral faculties. Kanhada, the wood-cutter, who was in the habit of going to a courtesan's house, also went there and was present in the exegetic-hall. The Sadhu preached the instability of this world and requested people to take vows in order to lead a good and happy life He also emphasized that knowledge without any chaste life (Sila) and austerities without self-control are all worthless A man of encyclopaedic knowledge may go to hell if he is unaccompanied by conduct (Sila) ; on the contrary, a dullard

1. Verse 8 (Description of the country , verses 8-15). 2. Verses 16-17. 3. Verse 19.

and lascivious type of man may become free from the bondages of this world if he pursues conduct truly by taking vows, even for a day or two[1]. Everybody including Kanhada, was influenced by this advice. Kanhada, atonce, stood up and related his story as a wood-cutter that he somehow passed his days by selling woods. Hence, it was not possible for him to take any vow. He also confessed in front of all persons that he was in the habit of going to a courtesan's house. So he wanted to know whether a man of his type would he able to take any vow in order to lead a chaste life henceforward Hearing these words the Sadhu advised him to take two vows that he should not go to a courtesan's house, at least, on the full-moon day and that he should not tell a lie for the sake of conduct. Kanhada agreed to practise those vows whole-heartedly[2].

In course of time, there came a rainy season.[3] The rivers and pools had become full of waters and streams were (ollowing strongly Taking this advantage, Kanhada cut down some pieces of Sandalwood from the forest near by. Kanhada did not know the value of this Sandalwood Binding tightly, he took them to his house, placing them on the current of the stream He, then, took them to the market for selling[4]. In that country, there was a big merchant, Sripati[5] by name who had a servant, named Champaka. One day his servant Champaka went to the market and saw this Sandalwood brought forth for selling. Champaka, paying him something, brought Kanhada to his lord's house placing the bundle of wood on his head[6]. No sooner had Kanhada come

1. Verses 20-32. 2. Verses 38-39. 3. Verses 40-42. 4. Versees 43-45. 5. Verses 46-47. 6. Verse 48.

to the courtyard of the merchant Sripati, who was seated on a window,[1] than he (Sripati) perceived the smell of the sweet fragrance of sandal-wood. Sripati knew the value of this wood and so he, at once, asked for its price.[2] Kanhada did not know the value of this wood ; so he could not suggest any price. The merchant gave Kanhada five hundred gold coins and purchased all of it.[3]

With this purse, Kanhada came to the house of a courtesan, Kamalata by name.[4] There were present many whore-mongers, dandies and lechers who laughed at the sight of Kanhada, thinking him to be a proper jovial person who would spend the whole night in the house of a harlot Kamalata[5] who was a paragon of beauty that "excels the quirks of blazoning pens, and in the essential vesture of creation does tire the ingener" [6] Kanhada, obviously attracted by her beautiful appearance[7] came to her and gave all his wealth [8] That courtesan heartily welcomed him and after shave and bath, gave him scented oil, costly clothes, shirts etc. to wear.[9] She also took him into her inner apartment. After dressing well, when Kanhada was just about to plunge into the very vortex of amorous dalliance, he saw the full-moon through the window [10] Seeing the full-moon, he at once remembered his vow and left the place[11] without making any more ado and went out of her house, leaving his purse with her and somehow passed the night outside.[12] Kamalata searched him hither and thither, but could not find him anywhere She waited and waited for him till the night was over. At last, she

1. Verse 49. 2. Verse 50. 3. Verse 51. 4. Verse 52. 5 Verses 52-54. 6. Verses 55-64. 7. Verse 65. 8. Verses 65-66 9. Verses 67-72. 10. Verse 73. 11. Verse 74. 12 Verses 75-80.

became worried and thinking of that money improperly earned, she endeavoured her very best to return the same to the proper person. Hence, in the next morning, she related the whole story to all of her friends. Then Kamalata, along with her old and young friends, went to the house of the king and told the whole story of this money, got from an unknown person who came to her house last night. She also expressed her intense desire to return the purse to that unknown person, because of the fact that as she did not properly earn this purse she could not claim this money as her own Then she handed over this purse to the king and came back home.[1]

The king, by beating of drums, announced this event through out his kingdom But unfortunately nobody responded.[2] At last, Kanhada came and with folded palms demanded that purse.[3] On being asked[4] he reiterated the whole story[5] as to how he got the money from the merchant Sripati by selling wood which was the means of his livelihood,[6] and how he went to the house of a harlot and why he left her (because of his vow not to enjoy the company of any woman on a full-moon day).[7] After enquiry[8] and knowing fully well that the statement of Kanhada, the wood-cutter, was true,[9] the king returned this money[10] to him and also rewarded him highly as a demonstration of the truth of this assertion and ultimately made him the dewan (Pradhan) of his country in virtue of his good character and trust-worthiness.

1. Verses 81-88. 2. Verses 89-90. 3. Verse 91. 4. Verses 92-94. 5. Verse 95. 6. Verses 96-102. 7. Verses 103-108. 8. Verses 109-112. 9. Verses 113-118. 10. Verses 119-131.

One day a monk Dharmaghosa[1] by name came to him and first initiated him as a monk and then began to teach him regularly the eleven Angas and Upangas; five Mahavratas, five Samitis and three Guptis;[2] and at last turned him into a monk.[3] Then Kanhada began to lead the life of a monk shunning all shorts of worldly happiness.[4] Then the poet describes the consequences of a good conduct (Sadhu-sila), paying extravagant encomiums to Kanhada[5] Here ends the story of the text.

4. *Sources of the story and the Kathanaka Literature.*

After the story just narrated we may proceed to trace its sources. It must be admitted on all hands that it is a very difficult task for us to ascertain at this stage the exact source of this story, although from the text[6] we come to know that the present story has been taken from a "Digambara Katha-kosa". But what Digambara-Katha-kosa the poet meant, is not possible to ascertain with the material available at our disposal

In the Brhatkatha-kosa of Harisenacarya[7] we come across the names of Kirtidhara (story No. 57 & 152), Sripati (Story No. 1029) and Kamalata (Story No. 65). But with the name of Kamalata of the Brhat-katha-kosa-story made famous by various Jaina poets in their literature, Manasagara's story has nothing in common except the name. In the Brhatkatha-kosa

1. Verse 185. 2. Verses 132-135. 3. Verses 136-138. 4. Verses 139-148. 5. Verses 149-154. 6. दिगपट कथाकोस थी रचियो ए अधिकार। ऊछो अधिको भाखियो मिछा दुक्कर भार ॥ (verse No. 160) 7. Ed. by Dr. A. N. Upadhye, Bharatiya Vidya Bhawan, Bombay, 1943.

Kamalata is described as the daughter of a courtesan Sumitra with all her good qualities, but that Kamalata has nothing to do with the Kamalata of Kanhada-Caupai.

In the Katha-kosa[1] of an unknown poet and date, we have the name of Kama'ata who is described there as a princess and who was wedded with Dipasikha, the son of Vijayavarman, a king of Svetambika. The king Dipasikha had four wives, of whom Kamalata, a virtuous and learned lady, was one.

Similarly, in the Prabandha-cintamani[2] there occurs the name of a Kamalata who is the daughter of the king Kirtiraja of Paramara family She was a princess and married a neatherd named Phulada

In all these cases the name Kamalata is found (not associated, however, with Kanhada), and the story element is not similar either to that of Manasagara's Kanhada-Caupai It seems, therefore, probable that the poet might have taken its theme from a story of Kamalata which is lost or unknown to us now-a-days ;[3] or which was, once upon a time, imbedded either in the commentaries of the Agama texts or in the Kathakosa

1 Translated into English by C. H Tawney, London, 1895, P. 69. 2 Translated into English by C. H Tawney, Calcutta, 1901. P. 27 3 In the texts of Acaranga, Kalpasutra Jnatrdharma katha, Uttaradhyayanasutra, Upasakadasasutra, Antakrd-dasasutra, Anuttaropapatikadasa etc. and in their commentaries, we have some tales which are purely Jaina in their origin But in them there are other stories also which are taken from the common stock of Indian tales and which have been turned into a Jaina creed. The main purpose of all these stories is to give lessons to monks and householders or to nuns and ladies. Because they believe that the virtues of a house-holder or lady are essentially conducive to ascetic life.

of the Jainas (not yet known to us). And from that story this has been entirely manoeuvred and embellished by our poet Manasagara in order to preach sermons with a moral tag attached to it. This type of ecclesiastical discourses which is seldom intended for entertainment, is famous among the Jaina writers. "These stories, which are generally intended to illustrate the tenets and practices of Jainism, are genuine fragments of Indian folk-lore and they are written by some Jaina theologians for the purpose of the edification of the votaries of that religion"[1].

Our present text "Kanhada-Caupai" is a small but famous Jaina narrative story written in an old Rajasthani language. We have a pretty large number of Jaina narrative literature written in Sanskrit, Prakrit and Apabhramsa and even in early Rajasthani, Gujarati and Western Hindi and also in Kannada or Tamil beginning from the commentaries to the Jaina texts up to the time of the compilation of Kathanaka[2] literature. It should be remembered, as Winternitz says that "the Jaina monks and authors have always been tellers of tales far rather than historians ; because the commentaries to the sacred texts contain not only a mass of traditions and legends, but also numerous

---

1. Tawney's Katha kosa P. VII. 2. "The word 'Kathanaka' does not appear to be a recognised term of orthodox poetics, although the **Agni Purana** (337. 20) speaks of Kathanika as a variety of Gadya-Kavya, along with Parikatha and Khandakatha. Andavardhan (iii. 7) recognises Parikatha and Khandakatha adding - Sakalakatha (all these terms being explained by Abhinavagupta in his commentary), but omits Kathanika. The description of Kathanika, however, given by the Agni Purana does not apply to the so-called Jaina Kathanaka." Dasgupta & De, Hist. Skt. Lit. Calcutta, 1947. P. 426 fn. 8.

fairy-tales and stories, and moreover that the legendary poems, the Puranas and Caritas were often only a frame in which all manner of fairy tales and stories were inserted. Now, in addition to all this, the Jainas have produced a vast fairy-tale literature in prose and in verse, in Sanskrit, Prakrit and Apabhramsa. All these works, be they stories in plain prose or in simple verse or elaborate poems, novels or epics, are all essentially sermons. They are never intended for mere entertainment, but always serve the purpose of religious instruction and edification.[1]" "As is the case with the Buddhist's Jatakas, this narrative literature imbedded in the commentaries, contains many popular themes, including some which occur also in other Indian and Non-Indian literatures, and form part of the common treasury of universal literature [2]" So "like the Buddhist monks, the Jaina monks, too, delighted at all times in adorning their sermons with the telling of stories, in converting worldly stories into legends of saints, in elucidating Jainistic doctrines by means of 'examples' thus exploiting the inborn Indian love for fables in order to win over and retain as many adherants as possible for their religion."[3]

There existed a large number of Jaina narrative tales treasured up in the Kathanaka literature of the Jainas; but all of them are not available at present. It is not the place to give a detailed summary of all the Kathanakas, on the other hand, some important Kathanaka texts have been mentioned in order to fecilitate our understanding :—

1. M. Winternitz. History of Indian Literature, Vol. II, Calcutta. 1933, P 524. 2. Ibid. P. 489 3. Ibid. P. 484.

Name of the work	Author	Date	Language	Contents	Remarks
1. कालकाचार्यकथानक[1]	?	?	Prakrit	It is the story of K a l a k a who transferred the date of paryusana festival from the fifth to the fourth of the first half of the month of Bhadra.	Recited by the monks at the end of the Kalpa-sutra.
2. बृहत् कथाकोष[2]	हरिषेणाचार्य	931-32 A D (Composed this text)	Sanskrit	More than 157 tales.	
3 कथाकोष	श्रीचन्द्र	941 996 A. D.	Apabhramsa	53 tales.	
4. कथावली	भद्रेश्वर	10th. Cent. A. D.	Prakrit	It narrates the accounts of 63 S a l a k a p u r u sa.	
5. कथामणि कोष	देवेन्द्रगणि	1078 A. D.	Prakrit	41 chapters	
6 कथाकोष	जिनेश्वरसूरि	1092 A. D	Prakrit	239 gathas	
7. कथाकोष or कथारत्नकोष	देवभद्र	1101 A. D.	Prakrit. & Sanskrit	Stories in P r a kr it a n d in Sa n skrit.	
8. कथानककोष	विनयचन्द्र	1109 A. D.	Prakrit	140 gathas	

1. Ed. & tr by H. Jacobi, ZDMG (34), 1880, PP. 247—318 · Supplements to it ZDMG (35), 1881, P. 675 ff.; Leumann, ZDMG (37), 1883, P. 493 ff. N. W, Brown, The story of Kalaka, Washington, 1933, (Almost all the recensions have been examined by him), vide Jinaratna Kosha. 2. Ed. by A. N. Upadhye, Bharatiya Vidya Bhawan, Bombay, 1943 3. BhauDaji, JBRAS (IX), 1867, P. 129 ff.

Name of the work	Author	Date	Language	Contents	Remarks
9 कालका-चार्य कथानक	भावदेव सूरि	1255 A. D.	Prakrit	102 gathas	
10. कथार्णव	धर्मघोष	13th. Cent A. D.	Prakrit	208/218 verses.	
11. अन्तर कथा संग्रह or कथासंग्रह	राजशेखर (मलधारी)	1348 A.D	Sanskrit	100 stories.	
12 प्रबन्धकोष	,,	,,	,,		
13. कर्पूर प्रकरटीका	जिनसागर	1435 A.D.	Sanskrit & Prakrit	150 stories	
14 कथा-महोदधि	सोमचन्द्र	1448 A.D.	Prakrit & Sanskrit	157 stories.	
15. धर्मकल्प द्रुम	उदयधर्म	1450 A.D.	Sanskrit		
16 कथाकोष or भरतादि कथा	शुभशील	1452 A.D	Prakrit		But vrtti in Sanskrit and it contains many stories
17. कथा संग्रह	सर्वसुन्दर	1453 A.D.			
18. कथारत्न सागर	नरचन्द्रसूरि	1463 A D.		15tarangas	
19. पंचशती प्रबोधसंबंध[1]		1464 A.D.		600stories.	These stories are of the nature of fantastic fairy-tales.
20. चम्पक श्रेष्ठी कथानक	जिनकीर्ति	Middle of the 15th cent A.D.	Sanskrit		
21. पाल-गोपाल कथानक[3]	,,	,,	,,		

1. Devachand Lalabhai Pustakodhara series No. 77 & 87, Bombay 1932 and 1937; vide also Peterson's Report III, P. cxxi, Winternitz Ibid, P. 544 2. Ed G. Hertel in ZDMG, (65) 1911. pp. 1-51, 425-47. 3. Vide G Hertel, Jinakirti's Geschichte von Pala und Gopala, Leipzig, 1907.

Name of the work	Author	Date	Language	Contents	Remarks
22. आराधना कोष	नेमिदत्त	1530 A.D			
23. कथाकोष	श्रुतसागर	Middle of the 16th cent A.D.	Sanskrit		
24 कथा रत्नाकर[1]	हेमविजयगणि	17th cent A.D.	Sanskrit, Prakrit, Raj., Guj. O.H. etc	258 stories in 10 taran- gas.	Mostly of fools, rogu- es and artful women.
25. कथा कोष[2]			Sanskrit, also with Prakrit verses.	collection of popular tales.	
26. उत्तम- कुमार चरित कथा[3]					Stories are allegorical & didactic.
27 पापबुद्धि धर्मबुद्धि कथानक[4]					" "
28 सम्यक्त्व कौमुदी[5]			Sanskrit with Prakrit gathas.	27 stories.	
29 कथाकोष					
30 कथाकोष					Ref. found in Jaina Sahitya Itihasa P. 168.

1. Ed. Hiralal Hamsaraja, Jaina Bhaskarodaya Press, Jamnagar 1911 ; trs. J. Hertel, Munchen, 1920. 2. Trs. by C. H. Tawney, London, 1895. 3. Ed. A. Weber in SBAW, 1884, i. p.269 f. cf. also Jaina Bhaskarodaya Press, Jamnagar, 1911, for the metrical version in 686 Slokas by Carucandra. 4. Ed. E. Lovarini in GSAI, III pp. 94-127. with translation. 5. A. Weber in SBAW, 1889, P. 731.

Name of the work	Author	Date	Language	Contents	Remarks
31 कथामहोदधि			Sanskrit	179 verses.	Its commentary contains 150 tales.
32 कथारत्नाकर	उत्तमर्षि		Sanskrit		
33 उपदेशमाला	जिनभद्र				
34 कथासमास	सर्वनन्दी				
35 कथासंग्रह	आनन्दसुन्दर				
36 कथाकोष	समयसुन्दर गणि				
37 अघट कुमार कथा					

Besides these,[1] there are many stories in old Rajasthani. Only a few of them may be mentioned[2] ; e g ; Anandasandhi of Vinayacandra, Mrgaputrasandhi and Dhanasandhi of Kalyanatilaka, Subahusandhi of Punyasagara, Bhavanasandhi of Jayasoma, Anathisandhi of Vimalavinaya, Kayavannasandhi of Gunavinaya, Jayantisandhi of Abhaya, soma etc.

The value of all these stories lies in the fact that they seem to be a 'depository of very many ancient, historical or semi-historical tradition' It also states that ancient India possesses a great mass of popular narrative themes most of them being unknown to us. With regard to the extent of this type of literature Winternitz,[3] says : "The mass of narratives and books of narratives among the Jainas is indeed vast. They are of great importance not only to the student of comparative

1. For other Kathanaka literature, vide. A. N. Upadhye's Brhatkathakosa, and Jinaratnakosa of H. D. Velankar, Poona, 1943. 2. For others vide Rajasthani Journal, Vol—1 Calcutta, 3. Ibid PP. 545-46.

fairy-tale lore, but also because, to a greater degree than other branches of literature, they allow us to catch a glimpse of the real life of the common people. Just as in the language of these narrative works there are frequent points of agreement with vernaculars of the people, their subject-matter, too, gives a picture of the real life of the most varied classes of the people, not only the kings and priests, in a way which no other Indian literay works, especially the Brahman ones, do" Dr. J Hertel has also said that the "characteristics of Indian narrative art are the narratives of the Jainas. They describe the life and the manners of the Indian population in all its different classes, and in full accordance with reality Hence Jaina narrative literature is amongst the huge mass of Indian literature, the most precious source not only of folk-lore in the most comprehensive sense of the word, but also of the history of Indian civilisation. The Jains' way of telling their tales differs from that of the Bauddhas in some very essential points. Their main story is not that of the past, but that of the present, they do not teach their doctrines directly but indirectly; and their is not future Jina to be provided with a role in their stores."[1]

5. *Language of the Text.*

The language of *Kanhada-Kathiyara ri Caupai* of the poet Manasagara is mainly middle Rajasthani of the oldest period, occasionally interpersed with Gujarati, sometimes mixed with Old Western Hindi.

1. As J Hertel's On the Literature of the Svetambaras of Gujarat, Leipzig, 1922 is not accessible to me, I have quoted these lines from Dr. A. N. Upadhye's Introduction (p. 116) to his edition of Brhatkathakosa.

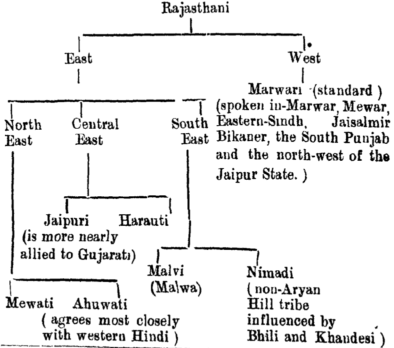
Rajasthani[1], the language of Rajasthan, or Rajwara, the country of the Rajputs, belongs to the Indic group of the Indo-Aryan branch of the Indo-European family of languages. At one time, (say upto about 1600 A. D.), Rajasthani or more properly Marwari (now one of its western dialects) and Gujarati (because of its close connection with it) were one language. This branch of New Indo-Aryan was then called Gujarati-Marwari (or Gujarati-Rajasthani) which was designated by L. P. Tessitori as the 'Old Western Rajasthani'. It arose about 1000 A. D. and was current over the whole of Gujarat and western Rajasthan.

These two languages were so alike at that time that it is not easy now-a-days to distinguish between old Rajasthani and old Gujarati; for instance, the poems of Mira (मीरा) are claimed by both the Rajasthanis and Gujaratis as their oldest poems. Even the present text is claimed by the Gujaratis as their own, and it is, therefore, included in the collection of Gujarati poems edited by M. D. Desai in his "Jaina Gurjara Kavio." Furthermore, Rajasthani including Gujarati was once upon a time included as dialects of Western Hindi But now-a-days Rajasthani is exclusively differentiated from Gujarati on the one hand, and from the Western Hindi on the other. The oldest literature of Gujarati-Rajasthani

1. "Rajasthani is the collective and classical denomination of that portion of India which is 'the abode of (Rajpoot) princes.' In the familiar dialect of these countries it is termed **Rajwarra**, but by the more refined **Rae't'hana** corrupted to Rajputana, the common designation amongst the British to denote the Rajpoot principalities". Tod's *Annals and Antiquities* Rajasthan, London, Vol. I, *1829*, P. *1*.

is almost the same, although Gujarati literature goes back to the 14th century A. D, or even before that, while that of the Rajasthani goes a little later. In fact, the oldest compositions of Gujarati-Rajasthani are in Nagara or Sauraseni Apabhramsa which is the immediate source of these two Neo-Indo-Aryan Languages.

The name Rajasthani is new and this new name has been given by modern philologists. The Rajasthanis call their language as मरु-भाषा or मारू-भाषा, or मुरधर-भाषा or lastly मरुदेशीय-भाषा; and these names are found in their old literary compositions.[1] Now-a-days Rajasthani has got innumerable dialects and sub-dialects,[2] of which a few can be mentioned in the following table :—



1 Vide राजस्थानी, प्रथमभाग, राजस्थानी साहित्य परिषत् कलकत्ता, Page 8. foot-note. 2. G. A. Grierson Linguistic Survey of India, Vol IX part—2, Calcutta, 1908; J R A S, 1910, P. 787 ff.

Now on this point Professor Suniti Kumar Chatterji[1] writes as follows :—

"The dialects of Rajasthani group (Marwari, Jaipuri, Mewati, Malavi and others) are spoken by over 14 millions, and they seem to form, with Gujarati, a separate branch of the Indo-Aryan family, which has as its basis the early IA dialect (or dialects) current in Malwa and Gujarat, strongly modified by the neighbouring Sauraseni speech of the Midland and in times post 500 A. C, also to some extent influenced by the language of the Gurjara tribes (possibly Dardic in origin), who came from the north-west and settled in Rajputana and Gujarat and became the rulers there The Western or Marwari form of Rajasthani is in reality the immediate sister of Gujarati, the eastern dialects agreeing more with Western Hindi. The exact affiliation of the Eastern Rajasthani diatects (Mewati, Jaipuri and Harauti etc , Malavi and Nimari), whether they are more intimately connected, in their origin, with Western Hindi or with W. Rajasthani—Gujarati, cannot be determined, in the absence of genuine ancient remains in them; but it has been found out that W. Rajasthani and Gujarati are derived from the one and the same source-dialect, to which the name 'Old Western Rajasthani' has been given (L.P. Tessitori, Ind. Ant. 1914-1916). This OWR. is represented by a respectable literature, mostly by Jain authors, and this literature dates from the 14th century and earlier to end of the 15th contery. Guja-

---

1. Origin and Development of Bengali Language, Calcutta, 1926, pp. 8-9, § 11. As the book is not always available to the common readers, I have quoted the whole of it. Also compare his Rajasthani Bhasa, Udaipur 1949.

rati must have differentiated from OWR. in the 16th century into a separate language, which is now spoken by over 10 millions. The first great poet of Gujarat, Narasingh Mehta, belongs to the 15th century, but the language of his poems, which are very popular, has been modernised in the course of centuries The dialects of Rajasthani are not much used for literary purposes now. The language of the midland has always been dominant in Rajputana. In the earlier days the Sauraseni Prakrit and Sauraseni Apabhramsa had spread their influence over the original Indo-Aryan dialects spoken in Rajputana and Gujarat; and the literary dialect of the old Western Hindi period, Avahatta or 'Pingala', was much cultivated by the bards of Rajputana as 'Dingala' or the local Rajasthani dialects, especially Marwari; and at the present day, Hindi is almost the sole literary language. There is, however, a rich literature in Rajasthani, mostly in Marwari, and to some extent in Jaipuri, consisting mainly of bardic poems and chronicles. This literature has been explored, and its nature made known, by Tessitori, who edited, before his lamentated and untimely death, some fine Marwari poems."

Now I shall discuss some of the linguistic peculiarities of the text.

§1. In the text the initial cerebral ण is not found, dental n (न) is used in its place. Medially even the conjunct cerebral ण is not found. Kh (ख) and Sh (ष) are represented by the same latter ष. Generally anusvara (अनुस्वार) and anunasika (अनुनासिक) are represented by a dot (ं bindu) over the अक्षर; but it is probable that bindu represents अनुनासिक throughout, except in Tatsama words, where it is represented by anusvara (अनुस्वार). That is why in order to indicate the nasal sound, I have used candrabindu (ँ) over the अक्षर. The two sibilants (श and स) are used indiscriminately, e.g., सील and शील; सारद and शारद etc.

§2. In the text some variants are noticed due to some orthographical peculiarities, e.g, ग्यान (A): ज्ञान (BP); सखि or सषि (A) : शषी (B) and सखी (P); परिमल (P) : परमल (A) and परीमल(B) ; सारद (A) : शारद (P) ; शील (B) : सील (A) ; सोहमणि (A) : सोहामणि (B) ; प्रति (A-B) : प्रत्ये (P) etc.

§3. The vocabulary found in this text is of three types : Tatsama, Tadbhava and Desi. The Tatsama words are kept generally as they are ; but only in a few words some modifications are noticed, probably due to the local influence of the dialect. As for examples, the words, such as, वीणा, पुस्तक, श्रुत, दाता, दान, शील, तप, भावना सुख, गुरु, ज्ञान, तर्क, षट्, उपदेश and many more, can be cited. Some Tadbhava words are also found as they are used in Prakrit. These are—सीयाल ∠ शृगाल (4), जीह ∠ जिह्वा (6), पावन ∠ √पू (6), सीह ∠ सिह (4), दाहिण ∠ दक्षिण (8), नयर ∠ नगैर, (8) सामिनी ∠ स्वामिनी (2), जोयन ∠ योजन (8), लाह ∠ लाभ (10), लखमी ∠ लक्ष्मी (10), लोय ∠ लोक (11), वाडी ∠ वाटिका (12), चोहटा ∠ चतुः हट्टा (12), परव ∠ पर्व (15), पोसह ∠ पौषध (15), आण ∠ आज्ञा (15), राणी ∠ राज्ञी (17), सही ∠ सखी (17), अविहड ∠ अविघटित (17), दूध ∠ दुग्ध (17), चउणाणी ∠ चतुर्ज्ञानी (19), आगल ∠ अग्र (20), आरज ∠ आर्य (22), तीरथ ∠ तीर्थ(25), आहेडी ∠ आखेटक (30), नेह ∠ स्नेह (38), मूरख ∠ मूर्ख (45), मांडी ∠ मण्डित (56), निलवट ∠ ललाट (57), भमुह ∠ भ्रू (57), (cf. Hc. Pkt. Gram. II. 167. भ्रुवो मयाडमया), नेऊर ∠ नूपुर (62), सेज ∠ शय्या (72), पडहो ∠ पटह (81), विहाण ∠ विभान (110), अहिणाण ∠ अभिज्ञान (117), परभाव ∠ प्रभाव (131) छक्काय ∠ षट्काय (137), दुक्कड ∠ दुष्कृत (160) etc. Besides these, some Desi vocables, which are of a different origin, are also noticed here and there Examples of some important words are given here. दुन्दाला फुन्दाला (9), अयरण (11), माल (=समूह, 5), लीह (=विख्यात, 6), तोपण (=तथापि, 13), साचवी (=सम्पाद्य, 20), बुंब (28), लिगार (29), नीको (57), मेली (=त्यक्तवान्, (76), वाटडी (=मार्ग ,77-78), सेरी सेरी (90) etc.

§4. The word सनूर (44) meaning beautiful is interesting. It maintains its original meaning. It is derived from the Vedic सु-नर which becomes सुन्दर in Sanskrit by glidic process. Here it becomes स-नूर probably with the influence of the Urdu word नूर meaning beauty (cf Arabic नूर meaning light, ज्योति).

§5. The changes of the vowel and consonantal sounds in the following words are interesting :—

त्रेविसमो (1) ∠ त्रिविंशतितम ;

देवल (7) ∠ देवकुल ;

अमी (55) ∠ अमृत, (cf. अमीरस (59) ∠ अमृतरस ,

सोवण (61) ∠ स्वर्ण ;

सान्नी (79) ∠ सज्ञा ; etc etc.

§6. *Ya-Sruti* :– सीयाल (4) ∠ शृगाल ; नयर (8) ∠ नगर.

§7. *Anaptyxis* (*स्वरभक्ति*) :—पारसनाथ (1) ∠ पार्श्वनाथ ; परधान (8) ∠ प्रधान , परमाण (8) ∠ प्रमाण , दरशन (14) ∠ दर्शन ; समकित (15) ∠ सम्यक्त ; सरदह ∠ श्रद्धा ; करसण (42) ∠ कर्षण ; etc. etc

§8 Cases of *Compensatory Lengthening* are also noticed in this text :—as; सोह (4) ∠ सिह , जीह (6) ∠ जिह्वा, साद (79) ∠ शब्द ; etc. etc.

Declension of Nouns

§9. So far as declensional endings are concerned, we notice only two *genders* : Masculine and Feminine; and two *numbers* : Singular and Plural ; and the following *cases* : Nominative, Accusative, Instrumental, Ablative, Genitive, Locative and Vocative. I give below the paradigm of declension :—

	Endings	Singular	Plural
Nom.	o		
Accu.	o+ना+ने+नो (also in Genitive)	पारसनाथ (1), धनना (11), मनना (11); कठीयारा–ने (34); लखमीनो (10) fem.	सेवक-ने (2)
Inst.	ऐ+सूँ (Loc)	ञोलै 4), फलै (5), भारीसूँ (34)	
Abl.	हुंदा+सेती (Post-positions]	सयणं-हुदा (66), सयणँ-सेती (67).	
Gen.	नी + ने+नो+तना+ तनी+तने+तनो+णुँ [Sometimes न becomes cerebralised]	कुलनी (13), जेहनी (16), व्रतनी (39); सेवक-ने (2); सेठनो (48), साधुतना, काण्हड -तणा. (also तनी), साधु-तने (19), कठी-यारा-तणो (39), नगर-तणो (18); काण्हड-णुँ.	गुरुआ-तणा (7,)
Loc	ए+ऍं+सुँ+मे or मे+माहे	समुद्रे, गोखे (49); नारीसुँ (8,13), विधिसुँ (20); जगमे (23); सहर मे, नगर-माहे (11).	
Voc.	[Like nominative]		

It should be pointed out here that there is no difference between the two numbers, so far as the declensional endings are concerned: the number depending upon

its meaning. Post-positions are used in the Ablative case instead of declensional endings. No different declensional endings are used for the two genders, endings are the same.

Numerals

§10 The following *cardinals* are found in the text :— एक(96), दोइ (48), दोय (11,50), दोणु (48), तिन (48), तीन (15), चार (48), पाँच (51), षट् (14), सात (131), आठ (148), नव (161), ईग्यार (रे), (138), बारह (46,138), चउद (47), सतर (154), बावीस (140), सेताले (=47) [135], चोरसी (=चतुरशीति) [12]

§11 The following *ordinals* are also found in the text —[Here long ई is used : because these are all adjective to the feminine nouns]

पहेली (18), बोजी (32), तोजी (51), चोथी (97), पाचमी (88), छट्ठी or छठी (112), सातमो (131), आठमी (148), and नवमी (161)

Pronouns

§12 The following Pronouns are used in the following senses :—

A The *first personal* Pronoun—मुझ-ने (74, Gen. Sg.) म्हरा (91) =मम, माहा-रो (104) =मम.

B· The *Second Personal* Pronoun—तुम्हरा (Gen. Sg)

C The *Demonstrative* Pronoun—इण (40), इण-मे (3), इणसुँ (14), एहि (14) (=अत्र), एह (24), एम (31), एह-नो (51).

D The *Relative* Pronoun—जै (3), जोह or जेह (6), जेहनी (16), जेह-ने (17) (=यत्र), जिम (30) (=यादृश),

E The *Correlative* Pronoun—तास-तणा (6-7), तिहा (40), (=तत्र),

F. The *Interrogative* Pronoun—किसी (7), कोई (9).

G. The *Reflexive* Pronoun—आपणो (21),

Verbs

§13. Verbal forms are simple in this text. We have only Present, Past and Future tenses and a few forms of Imperative mood Causative forms are not abundantly found. There are some forms which are Passive in their origin, but are used here actively. Only a few infinitive forms are met with in the text. Gerunds are also noticed in in the text. In the following some noteworthy forms of the Verb are given :—

A. *Present tense* :—करजै (4), टालै (5), मिलै (6), थाए (6), सानिधकरै (8), सोहे (12), ∠शोभते, प्रणमूँ (1), 1st Pesron Sg. होय (10), ∠भवति, आणे (1), घुमै (12), अछै (13), माडेछै (13), चाल्हे (13), अणमरे ∠अनुसरति, सरदहे ∠श्रद्दधाति, वही (15) ∠वहति छे (37) ∠अस्ति, हुइ (49) ∠भवति, जाणे (45) ∠जानाति, देई (48) ∠Pkt दआइ ∠Skt ददाति, भये <भमइ ∠भ्रमति कहे (31), सुणे (32), राजकरै (16).

B. *Past tense* :-- भाजिगया (16), समसरया (19), जाय (20), ∠यातः (=गतः), आयो (45), or आय (=आयात 20), दे or देय (21), पामियो, पामिये (51), or पाम्यो (22), ∠प्राप्त, दोधी (33), पैठो (42), ∠प्रविष्टः, थयूँ, (47) or थाप्यो (128 ∠स्थापित, लद्धो (51), लेज्यो (31), हुवो (6), ∠भूतः, पाल्यिुं (7), etc. etc

C. *Future tense*—करज्यो (2), गावस्याँ (6), गावुँ (7), सुणज्यो (18), हुवै (8), or होसे (44,88), ∠भविष्यति, सभलज्यो (7),etc

D. *Imperative mool*—जाण (9), कहुँ (18), लाभुँ (12), दाँखु (7), etc

§14. In order to indicate *Present progressive* tense the words द्युं छ्युं (87, 92) करछो (39), वमै छै (11) अवसर ले (101), etc are used

§15. The forms वाधै (1), वाह (42) and पाल्हे (46) ∠पालयति are practically Causative in their meaning

§16. The following Passive forms are used actively—
वाधैं (I), दीसैं ∠दृश्यते (II,44), वाध्यो (41), रुध्यो,(42), बान्ध्यो (44).

§17. The following gerundial forms are used in the text :—

जाणी (=ज्ञात्वा , 21), करि (=कृत्वा, 28), दोडि (33), आयणे (=आगत्य , 33), तजो (=त्यक्त्वा, 38), भाजो (44), मेलो (26), सुणि (=श्रुत्वा, 97), चढावो (Causative, 102).

§18. Infinitives are generally formed with ताँ , e. g , गणताँ (=गणयितुम्) (43)

These are some of the important salient grammatical features of the text, which I have been able to cull out from the text in order to present before the scholarly world some specimens of the old Rajasthani language.

6 *Bibliography*

A. Books and Papers on Rajasthani.

1817. **Adelung**, Johann Christoph—Mithridates oder allgemeine Sprachenkunde, vol—IV Berlin, 1817 (Brief notices of Jaipuri on pp. 488 and 491.)

1828 **Wilson,** H H —A Sketch of the Religious sects of the Hindus, Asiatic Researches, vol—XVI, 1828, (for a Sketch of the Dadu Panthis). Also reprinted in his Essays and Lectures on the Religion of the Hindus, vol—I, London, 1861.

1829—1832 **Tod**, Lieutenant Colonel James—Annals and Antiquities of Rajasthan, or the Central and Western Rajpoot States of India. London, vol—I 1829 , vol—II, 1932.

1837. **Siddons** Lieut G. R —Text and translation

of one of the Granthas, or Sacred Books of the Dadu, Panths Sect. JASB, 1837. pp. 480, ff. ; and 750 ff

1866. **Robson**, Rev. J.—A Selection of Khyals or Marwari plays, with an introduction and glossary, Bewar Mission Press, 1866.

1876. **Kellog**, Rev. S.H.—A Grammar of the Hindi language, in which are treated the High Hindi also the colloquial Dialects of Rajputana with copious Philological notes, Ist. ed. Allahabad and Calcutta, 1876 ; 2nd ed. London, 1893; 3rd ed. 1938 ; Reprinted in 1955

1879-83. **Wilson**, J—Final Report on the Revision of Settlement of the Sirsa District in the Punjab, 1879-83, [For a general account of Bagri dialect see section 100 and for the grammar, vide Appendix II]

1884. **Traill**, Rev. John—Bhasha Literature—Jaipur 1884

1886 **Fallon**, S. W—A Dictionary of Hindustani proverbs including many Marwari, Panjabi, Maggah, Bhojpuri and Tirhuti Proverbs, Sayings, Emblems, Aphorisms, Maxims, and Similies, by the late S. W. F, Edited and revised by Capt. R C. Temple, assisted by Lala Faquir Chand Vaish of Delhi, Benares and London 1886

1889. **Dhruva**, H. H—Mugdhavabodha - mauktika, an elementary Sanskrit Grammar with explanations in old Western Rajasthani, written in the year 1394 A. D. edited by H. H. Dhruva. 1889 [An account of the old Western Rajasthani forms occuring in it, is made by Sir George Grierson in Linguistic Survery of India, vol—IX, pt. ii, pp. 353-364.]

1898. **Macalister,** Rev G—Specimens of the Dialects spoken in the state of Jeypur, Allahabad, 1898. [Contains specimens, a vocabulary and a grammar.]

1899. **Grierson,** Sir George Abraham—First Rough

List of Language. Rajputana, Central India and Ajmare, Merwar, 1899.

1901. **Grierson**, Sir George Abraham—Note on the Principal Rajasthani Dialects, JRAS, 1901 p 787 ff.

1908 **Grierson**, Sir George Abraham—Linguistic Survey of India, Vol—IX, pt. ii Indo-Aryan Family ; Central group. Specimen of the Rajasthani and Gujarati 1908.

Grierson, Sir George Abraham — Rajasthani. Encyclopaedia Britannika, 14th ed.

1901. Pandit Ramkarn Sarma—Marwari Vyakaran. A Marwari Grammar written in Marwari, Jodhapur, 1901 (?)

1911-20 **Smith,** Vincient—The outlines of Rajasthani, Indian Antiquary 1911-20.

1914-16. **Tessitori**, L P. —Notes on the Grammar of the Old Western Rajasthani with Special Reference to Apabhramsa and to Gujarati and Marwari, in the Indian Antiquary, vols, 44--45, 1914—16 [Also published as a separate book being the reprint printed at the British India Press, Mazgaon, Bombay, 1916 pp. 1-106.]

1926 **Chatterji**, Suniti Kumar — Origin and Development of Bengali Language, published by the University of Calcutta, Calcutta, 1926, pp. 8-9 §11.

1942. **Chatterji,** Suniti Kumar—Indo-Aryan and Hindi, Gujrat Vernacular Society, Ahamedabad, 1942

1949. **Chatterji**, Suniti Kumar—Rajasthani Bhasa Udaipur, 1949.

1935-37. **Pandit,** B S. — Syntax of the Past tense in old Rajasthani, Bulletin of the School of Oriental Studies, vol—VIII, 1935-37, pp. 695-98.

1935-37. **Bailey,** T. Grahame—Dhola - Maru ra

Duha : A Fifteenth-century Ballad from Rajputana. Is the present conclusion original ? BSOAS, vol—VIII, 1935-37, pp. 975-79.

1957. **Allen, W. S.**—Some phonological characteristics of Rajasthani, BSOAS, vol—XX, 1957, pp. 5-11.

1959. **Maheswari,** Hiralal — Rajasthani Bhasa aur Sahitya, Adhunic Pustak Bhavan, Calcutta, 1959.

B Some edited oldest Rajasthani texts.

Kaviraja, Muraridana—Dingala-Kosa, Rajasthani Press, Bundi

Narottama dasa, Swami—Rajasthan ra Duha, Pilani Rajasthani Series, 1991. V. S (=1934, A. D), 2nd ed. 1961, from Sadul Rajasthani Research Institute, Bikaner

Narottam dasa, Swami—Dhola Maru ra duha, Nagari Pracarini Sabha, Kashi.

Narottama dasa, Swami—Rajasthani, a journal in two parts, Rajasthani Sahitya Parishat, Calcutta.

Rampuria, Srichand—Nava Padartha of Acharya, Bhikhanji ed. by, Jaina Swetambara Terapanth Mahasabha, Calcutta, 1961.

Rampuria, Srichand—Sila ki Nava Bada of Acharya Bhikhanaji, ed by, Jaina Swetambara Terapanthi Mahasabha, Calcutta, 1961.

Nahta, Agar Chandra—Rajasthani Jain Kavi, pp. 143-152, of the Second part of Acharya Bhikhu Smriti Grantha, Jaina Swetambara Terapanthi Mahasabha, Calcutta, 1961.

C. Miscellaneous Books and Papers.

Banerjee, Satya Ranjan—A Note on the Remarks of Pischel on the Illustrative Gathas of Hemchandra, Proc, Trans. of the All India Oriental Conference, 18th session. 1958.

Buhler, Georg—Paia-lacchi-nama-mala, A Prakrit Kosha by Dhanapala, edited with critical notes, an Introduction and a glossary by Georg Buhler, Gottingen Robert Peppmuller, 1879; 106 p.

Desai, M. D.—Jaina Gujara poets, in two parts Bombay 1931.

Hertel, J.—Literature of the Svetambaras of Gujarat, Leipzig 1922.

Muni, Darshana Vijaya—Pattavali Samuccaya Gujarat, 1933.

Upadhye. Adinath Neminath—Brhat Katha Kosa, Bombay, 1943.

Vasu, Nagendranath—Visva Kosa (vol—vii) 1303B S

Velankar, H. D —Jinaratna Kosa I Poona, 1943

Winternitz, M.—History of Indian Literature, vol—II, Calcutta. 1933

॥ काण्हड़ कठोयारा री चौपई ॥

॥ ऐं ॥*

॥ श्री श्री वीतरागाय नमः ॥[१]

॥ दूहा[२] ॥

[१]

पारसनाथ प्रणमूँ सदा, त्रविसमो जिनचंद[३] ।
दुख दोहग दूरै हरै, अधिक बाधै आनन्द[४] ॥१॥

[२]

वीणा पुस्तक धारिणी, श्रुत दाता श्रुत देव ।
सानिध करज्यो[५] सामिनी, सेवकने नितमेव ॥२॥

[३]

दान शील तप भावना, इणमे इधको[६] शील ।
सेविजै[७] भवीयण[८] सदा, इणभव परभव लील ॥३॥

---

* It is very difficult to ascertain what does exactly this symbol mean Some may conjecture it as एम् (em) or ऐम् (aim) which means the "female energy or "cause of the world' Others think it as ओम् (om) or औम् (aum), which indicates the "male one , answering to our 'material and efficient causes' Cf Stevenson's Kalpasutra This is not found in all the three MSS and it seems that it is merely prefixed by the scribe and does not properly belong to the text. It can be taken as a "सरस्वती नमस्कार मन्त्र, which is used by the scribe in order to eradicate catastrophe

१ P. श्रीगुरुभ्यो नम । पंडित श्रीराम विजय गणि गुरूभ्यो नमः । श्रीजिनाय नम । अथ काण्हड़ कठीयारा री चौपई लिख्यते । २. P. दोहो । ३. A. पारसनाथ प्रणपरमानन्द । ४ PB अलिय विघन दूरे हरे, आपे परमानन्द । ५.P. करजो । ६.P. अधिक । ७ P सेवेजे । ८.P. भवियण ।

[१]

तेईसव तीर्थंकर पार्श्वनाथ जिनेश्वर को सवदा प्रणाम करता हूँ, वे दुख दुर्भाग्य को दूर कर आनन्द मे अधिक वृद्धि करते हैं।

[२]

हे वीणा पुस्तक धारण करने वाली! श्रुतदेवी-सरस्वती स्वामिनी!! सेवक का सानिध्य प्रति दिन करो।

[३]

दान, शील, तप और भाव—इन चारो मे शील प्रधान है। जो भव्य-जन इसका सदा सेवन करते है, वे इस भव और परभव मे लीला आनन्द लहर पाते है।

[४]

शीलै सुर सानिध करै, शीलै सीह[९] सियाल[१०] ।
शीलै संकट सवी टलै[११], फणधर[१२] हुवै फुल माल ॥४॥

[५]

शीलै सुख संपद मिलै, शीलै भोग रसाल ।
कठीयारा काण्हड़तणा[१३], फलै मनोरथ माल ॥५॥

[६]

कठीयारो काण्हड़ हुवो, शीलवन्त माहिलीह[१४] ।
तासतणा गुण गावस्याँ[१५], पावन थाये जीह ॥६॥

[७]

गुण गावुँ गुरूआतणा[१६], संभलज्यो[१७] सहुसन्त ।
शील किसी परि[१८] पालियु, ते दाखु दृष्टंत ॥७॥

★

९. P. सिह । १०. P. सिआल । B. सीले शीतल आग । ११. P. शीले सवि B. सीले शवी शंकट । १२. P. फणिघर । १३ P. काण्हड परे । १४ P. माहेलीह । B. माहेलील । १५ P. गावतां । १६ A B. गिरूआ । १७ P. संभलजो । १८ P. परे ।

[४]

शील के प्रभाव से देवता सानिध्य करते हैं, सिंह भी शृगाल जैसा हो जाता है, विषैला फणीधर साँप भी पुष्पमाला हो जाता है, शील के प्रभाव से सब कष्ट दूर हो जाते हैं।

[५]

शील से शुभ संवाद मिलते हैं, रसीली भोग्य सामग्री मिलती है और काण्हड़ कठियारे की भांति मनोरथ फलते हैं।

[६]

काण्हड़ कठियारा शीलवानो में प्रधान हुआ है जिसके गुणगान करने से जिह्वा पवित्र होती है।

[७]

महाभाग के गुण गाता हूँ, उसने किस प्रकार शील पालन किया जिसका दृष्टान्त बतलाता हूँ, सन्त-जन सब श्रवण करें।

॥ ढाल पहेली ॥[१९]

॥ देशी चौपई ॥

[८]

लाख जोयण जंबु परमाण[२०],
दाहिण भरत पूरव दिशि जाण।
नयरी अयोध्या अतिहि परधान[२१],
अमरपुरी केरूँ उपमान ॥१॥

[९]

कोडिगमे कोटिध्वज[२२] जाण,
लखपति कोई न आणे ज्ञान।
दुंदाला फुंदाला माह,
अवसर लै लखमीनो[२३] लाह ॥२॥*

[१०]

देवल दंड न ही नर लोय[२४],
तर्क विना न ही[२५] वाद न होय[२६]।
अयरण विना न दीसै घाव[२७],
मार वचन लोके न ही[२८] चाव ॥३॥

---

१९ Not found in AB २० P परिमाण। २१ PB प्रधान। २२ AB धज। २३ B लिखमीणो। २४ A नरलोइ। २५ BP किहँ। २६ A होइ। २७ P वेणी वधन नवि दीसे साव। B In the third line B has the fourth of our text and in the fourth B has साव च वाचदया बोले सही। २८ A न वि।

* After this B has a verse which corresponds to our no 11.

[८]

लक्ष योजनवाले जम्बूद्वीप के दक्षिण भारत में, पूर्व देश में प्रधान, अयोध्या नगरी इन्द्र की अमरावती के तुल्य उपमा वाली है।

[९]

वहाँ करोड़ों कोट्याधीश एवं अगणित लखपती हैं। बड़ी तोंद वाले प्रसन्नमुख साहूकार अवसर पाकर लक्ष्मी के (सद्व्यय) का लाभ लेते हैं।

[१०]

वहाँ मनुष्यों में दण्ड नहीं है पर शासन में दण्ड मिलेगा, तर्क के बिना वाद नहीं होता, ऐरण के बिना घाव नहीं देखा जाता, मार शब्द की भी लोगो में चाह नही है।

[११]

दोय जिभा परियारे जोय,
नगर माहे[२९] न वि दीसै कोय।
धनना कोई न दीसै चोर,
मनना चोर वसै छै जोर ॥४॥

[१२]

सोहे[३०] चोरासी[३१] चोहटा,
राज भवन घूमै गज हय घटा।
वापी कूप सरोवर सार,
वन वाड़ी न वि लाभुँ पार ॥५॥

[१३]

भोगी भमर[३२] अछै सहु कोय,
तो पण[३३] पग मांडेछै जोय।
पर नारीसु न करे प्रीत,
चाले उत्तम कुलनी रीत ॥६॥

[१४]

षट् दरशन मन एहि बात,
म करो परजन केरी तात।
दान शील तप भावना सार,
इणसु राखे[३४] नित बिवहार ॥७॥

---

२९ A. माहि। ३० Before this word B. पुर। ३१ After this A has ताहा। ३२ A भमरण। ३३ A पिण। ३४ A नित करै।

[११]

द्विजिह्वा (साँप) पिटारे में ही मिलेंगे पर नगर में (चुगल) नहीं, धन के चोर तो वहाँ कोई नहीं दिखते, पर मन के चोरों की प्रबल बसती है।

[१२]

नगर में चौरासी चौहटे (बाजार) सुशोभित हैं, राज-भवन में हाथी घोड़ों की घटा घूम रही है। वापी, कूप, सरोवर एवं वन-वाटिकाओं का पार नहीं मिलता।

[१३]

सब कोई (नागरिक) भोगी भ्रमर हैं, पर स्थान देखकर पैर रखते हैं। पर नारी से प्रीति नहीं करते, अपने उत्तम कुलाचार की मर्यादा में चलने वाले हैं।

[१४]

छहों दर्शन के मन में यही बात है कि परायी ईर्ष्या कोई मत करो। दान, शील तप और भाव सार पदार्थ है, इन्हीं का नित्य व्यवहार रखो।

[१५]

समकित मूल बारह व्रतधरे,
परव दिवस पोसह[३५] अणुसरे।
तीन तत्त्व सुधाँ सरदहे,
जिणवर आण अखंडित[३६] वहे ॥८॥

[१६]

राज करे कीरति[३७]धर राय,
वयरी[३८] भाजिगया[३९] वडि वाय[४०]।
न्यायवंत अकराकर नहि,
जेहनी कीरति[४१] समुद्रे वही[४२] ॥९॥

[१७]

सुप्रभा[४३] राणी जेहने सही,
रूपै रंभ समोवड कही।
राजा राणी अविहड प्रेम,
दूध नीर पारेवा जेम[४४] ॥१०॥

[१८]

पहेली ढाल कहि अतिसार,
राजा नगरतणो अधिकार।
मानसागर कहे सुणज्यो[४५] सहु,
आगल बात अचंभम कहुं ॥११॥

३५ A औषध। ३६ A B अखंडत। ३७ A B कीरतधर। ३८ P. वैरी। ३९ P भाजगया। ४० B भडवाय, P वडवाय। ४१ AB कीरत। ४२ AP. वही। ४३ B सुरप्रभा। ४४ B. दुधनी कीरत समुद्रा-पही। ४५ P सुणजो।

[१५]

यहाँ के लोग सम्यक्त्वमूल द्वादश व्रत धारण करने वाले, पर्व तिथि को पौषध करने वाले, देव, गुरु, धर्म पर शुद्ध श्रद्धालु एवं जिनेश्वर की आज्ञा को अखण्डित वहन करने वाले हैं।

[१६]

न्यायवान कीर्तिधर राजा राज्य करता है जिसके पराक्रम से शत्रु दल भग्न हो गया है। राज्य की कीर्ति समुद्र पर्यन्त फैली हुई है। वह तीव्र कर नहीं लेता।

[१७]

सौन्दर्य में रंभा के सदृश जिसके सुप्रभा नामक रानी है। राजा रानी मे परस्पर क्षीर-नीरवत् अखण्ड प्रेम है।

[१८]

राजा और नगर के अधिकारवाली पहली ढाल कही गई। अब मान-सागर कवि कहता है कि आगे की आश्चर्यजनक बात सब लोग सुनें।

॥ दूहा ॥

[१६]

ग्राम[46] नगरपुर[47] विचरता, चउणाणी अणगार।
विनिता[48] नयरी समोसर्या, साधुतणे परिवार ॥१॥

[२०]

कीरतिधर[49] अवनीपति, विधिसुं वंदण जाय।
वंदण विधिसुं साचवी, आगल बैठो आय[50] ॥२॥

[२१]

आगल बैठो परखदा, बैठो नगर नरेश।
अवसर जाणी[51] आपणो, दे[52] मुनिवर उपदेश ॥३॥

★

॥ ढाल बीजी[53] ॥

॥ बेराडी रागे। "भुलो मन भमरा रे काई भम्यो" ए देशी ॥

[२२]

मानवनो भव पामियो,
पाम्यो आरज देश।
श्रावकनुं कुल पामियो,
पाम्यो गुरु उपदेश ॥१॥

४६ R. गाँम। ४७ R. बन। ४८ B. वनिता। ४९ B. कीरत।
५० BP. जाय। ५१ B. आआ। ५२ BP. द्ये। ५३ A. बीजो।

[१६]

ग्राम नगर में विचरते हुए चार ज्ञान के धारक मुनिराज अपने श्रमण सघ के साथ आकर विनीता-अयोध्या नगरी में समौसरे।

[२०]

राजा कीर्तिधर विधिपूर्वक गुरु वन्दनाथ गया और विधि सहित वन्दन करके सन्मुख बैठा।

[२१]

अपने समक्ष नगर के राजा और परिषद को बैठे देख उचित अवसर ज्ञात कर मुनिराज ने उपदेश दिया।

[२२]

मानव-जन्म पाया, आय देश पाया, श्रावक का कुल पाया, और गुरु के उपदेश का शुभावसर भी पाया।

[२३]

चेतन[५४] चेतना[५५] प्राणिया,
करे जिन धर्म सार।
दान शील[५६] तप भावना,
चारे जगमे[५७] सार ॥२॥*

[२४]

अथिर[५८] एह[५९] संसार है,
जैसे संध्या वान।
डाभ अणी जल एहवो,
जेहवो पीपल पान[६०] ॥३॥

[२५]

तीरथ[६१] मल्यो जिम कारिमो[६२],
कारिमो[६३] सगपण संग।
जसो रे[६४] सोहणो[६५] रातको,
पंखी तरुवर[६६] संग ॥४॥‡‡

---

५४ P. चेतनी। ५५ B. चेतन। ५६ B. शीयल, P. शियल। ५७ B. माहे, P. जग। ५८ P. अथिरज। ५९ P. ए। ६० B कुंजर कान, P. कुंजर कान (in the bracket—पिगल पान)। ६१ P. तीर्थे। ६२ B. कारमो। ६३ Not found in P. ६४ Not found in P. ६५ P. सुहणो। ६६ BP only तरु।

* After this P has verse No 8=AB 4

‡‡. Not found in A.

[२३]

हे चेतन ! हे प्राणी ! चेतो ! जिनोक्त धर्म का सार दान, शील, तप, भाव का सेवन करो, यही जगत में सार पदार्थ है।

[२४]

यह संसार सन्ध्या के वर्ण की भाँति, दभ अर्थात् डाब-(कच्चा नारियल) जलबिन्दु की भाँति और पीपल के पत्ते की तरह (हाथी के कान की भाँति) अस्थिर है।

[२५]

तीर्थ में हुए अस्थिर मिलन और वृक्ष पर पक्षियों के रात्रिवास के अस्थिर संग की भाँति पारिवारिक सम्बन्ध भी अस्थिर है।

[२६]

काचो रे घट माटी तणो,
ऐसि आदमि देह।
विणसताँ[६७] वार न लागशे[६८],
कोई[६९] न ही रे संदेह ॥५॥ ‡1

[२७]

माता पिता सुत बांधवा[७०],
घर महिला रे[७१] आथ।
परभव जाताँ जीवने,
कोई नावे रे साथ ॥६॥ ‡2

[२८]

धंधो करि धन मेलीयुँ[७२],
पोख्युं सयल कुटुम्ब[७३]।
धंधाहि माँहे मरि गयो,
बाहर हुइ न हि बुंब[७४] ॥७॥ ‡3

---

६७ B. वीण०। ६८ B लागो नही। ६९ B. इनमे को। ७० A. मन मानक हय गज वरा। ७१ B P महिला। ७२ A. जोडीयो। ७३ AB. कुटंब। ७४ B बंब।

‡1. After this A has– तनधन जोवन कोरमो, खिन मै भंगुर थाय। सीसी काच तनी परै, जतन करताँ जाय ॥५॥

‡2. After this A has—आओ छे जीव एकलो, जासी एको एक। पाप-पुन्य होय प्राणियो, सहचरी परलोक ॥७॥

‡3. After this A has—

पापं करि धन संचीयो, लाख उपर कोड। मरणरे वेला मानबी, लीयो कणदोर छोड ॥९॥ देखो स्वारथ री दुनी, जगमें आपणो न कोय। मीठा बोलैजे वलगैत, वलग स्वारथ होय ॥ १० ॥ कोई मत जान आपणा, इण स्वारथीया जगमाहि। तात मात सुत बांधवा, को केह नो नाहि ॥११॥

[२६]

मिट्टी के कच्चे घड़े की भाँति मानव देह है। इसे नष्ट होते देर नहीं लगेगी, यह बात निस्सन्देह है।

[२७]

अरे! माता, पिता, पुत्र, बान्धव, स्त्री और धन—ये सब परभव जाते हुए जीव के साथ कुछ भी नहीं जाते।

[२८]

धन्धा करके धन प्राप्त किया, कुटुम्ब का पोषण किया और धन्धे में ही मर गया उसकी न तो कोई सहाय्य हुई न कोई पुकार।

[२६]

माहारुँ माहारुँ[७५] करते रहे,
तहारु नहि रे लिगार[७६],
कोण ताहारो तुॅ कहणो,
जुवो रिदय[७७] माझार ॥८॥ ‡1

[३०]

काल आहेडी नित भमे,
कर झाली कबाण।
वन मृगला[७८] जिम जीवने,
शर नाखारे[७९] ताण ॥९॥

[३१]

धर्म सखाइ ले चलो[८०],
लेज्यो[८१] संबल साथ।
आगल[८२] ही आदर हुवे,
एम[८३] कहे[८४] जगनाथ ॥१०॥ ‡2

७५ AB माहरो माहरो। ७६ BP. लगार। ७७ BP. हृदय। ७८ B. वनमृगला रे। ७९ B. जी। ८० A. सुकृत कमाइ घनीकरो। ८१ BP. लेजो। ८२ A. आगली। ८३ A. इम। ८४ A. जपै।

‡1. After this A has two more verses—

धन मेल्यो खरच्यो नही, नाम धरायो रे सूंब। देखौ मधु मक्षी परै, अवर हरै रस लुंब ॥ १३ ॥ जाण पणो जग दोहिले, मतिहीना धन होय, राजानन्द तणी परै, साह मम्मण जोय ॥१४॥

‡2 After this A has—

वाणी सुणी साधुतणी, रिज्या सुरनर भूप। करम निकचित तोडीयो, छायो दुरगति कूप ॥ १७ ॥

[२९]

मेरा मेरा कहते रहे। तेरा लेश मात्र भी नहीं है। अरे! हृदय में सोचो तो सही तू किसका है और कौन तेरा है।

[३०]

काल (यमराज) शिकारी अपने हाथ में धनुष लिए सदैव भ्रमण करता है और वन मृग की भाँति जीवो को अपने तीर का निशाना बनता है।

[३१]

धर्म के साथ सखाई-मित्रता ले चलो, सुकृत का संबल साथ में ले लेना, जगत् के स्वामी परमात्मा कहते है कि पहले से ही (धर्म-मार्ग) स्वीकार कर लो।

[३२]

राग वेराडी जे सुणे,
बीजी ढाल वखाण[८५] ।
मानसागर कवि एम[८६] कहे,
सुख लहो निरवाण[८७] ॥११॥

॥ दूहा ॥

[३३]

दीधी मुनिवर देसना, देखि[८८] आयो दोड़[८९] ।
आगल बैठो आयने[९०], कठीयारो करजोड़ ॥१॥

[३४]

कठीयारा ने मुनि[९१] कहे, किमो[९२] करो छो काम ।
भारीसु भगवान जी, आघो काढ़ु[९३] आम ॥२॥

[३५]

एक लियो तुम आखडी, एम कहे अणगार ।
सुसरा चार[९४] बहु परं, वधतो करो विचार[९५] ॥३॥

---

८५ A मनानीय ठाण। ८६ A. इम। ८७ A बीजी ढाल वखान। ८८ A. देखी। ८९ P. दोड। ९० P. आइने। ९१ B ० वर। ९२ P. किस्यूँ। ९३ A P. काढा। ९४ P. सुगरा ०। ९५ B. परिहार।

[३२]

इस वैराड़ी राग की दूसरी ढाल की व्याख्या को जो सुनता है, कवि मानसाग यों कहता है कि वह निर्वाण-सुख प्राप्त करें।

[३३]

मुनिराज न दशना उपदश दिया। कान्हड कठियारा दौड़ कर आया और हाथ जोड कर समक्ष बैठ गया।

[३४]

मुनिराज ने कठियारे से पूछा क्या काम करत हो? उसने कहा—भगवन्! काठ की भारी द्वारा दिन काटता हूँ।

[३५]

मुनिराज ने कहा—तुम विचार कर एक व्रत ग्रहण करो! और उसे स्वसुर द्वारा चार पुत्र वधुओ को दिये हुए धान्य चावलो की भाँति बढाओ।

[३६]

कठीयारे मुनिवर कहे, करी सील नी कार ।
पूनिम रे दिन पूज्यजी, परनारी परिहार ॥४॥

[३७]

ए छै[९६] मुझने आखडी, सद् गुरु केरी साथ[९७] ।
परमेसर परसादथी, भली करि छै भाख[९८] ॥५॥

[३८]

हिव कठीयारो कानड़ो[९९], आया आपने गेह ।
पूनिम परनारी तजी, निज नारीसुँ नेह ॥६॥

[३९]

करै उदर आजीविका, राखे व्रतनी रेख ।
काण्हड़ कठीयारा तणो, जनम[१००] कृता रथ लेख ॥७॥

*

९६ P एटली। ९७ P शीथ। ९८ P शीथ। ९९ B P हवे कठियारो प्रणमिने।
१०० P जन्म।

[३६]

कठियारा ने मुनिवर के पास शील की यह मर्यादा ली कि पूज्यवर ! मैं पूनम के दिन परनारी का परिहार करता हूँ।

[३७]

सद्‌गुरु की साक्षी से मुझे यह नियम है, परमेश्वर की कृपा से शुभ वचन (व्रतोच्चारण) किये।

[३८]

अब कान्हड़ कठियारा अपने घर आया। स्वस्त्री से स्नेह करते हुए उसने पूर्णिमा के दिन परस्त्री का त्याग किया।

[३६]

कान्हड़ कठियारा अपनी आजीविका द्वारा उदर पूर्ति करते हुए व्रत की मर्यादा रखता है, उसका जन्म कृतार्थ समझो।

॥ ढाल तीजी ॥

॥ बादल दह दिसि उन्हम्यो ॥ सखी ए देशी ॥

[४०]

इण अवसर आयो तिहा सखी, वारु वर्षाकाल ।
गिगन[१०१]धड़के[१०२] मेह[१०३] लो सखी, पानी वहे पड़ नाल रे,
चिऊ[१०४] दिशि जल खलक्याँ खाल रे, वलि[१०५] नदीय वहे असराल रे,
मर पूरित फूटे पाल रे ॥१॥

॥ वरषा रितु[१०६] आइ मोहना ॥ ए आँकनी[१०७] ॥

[४१]

मोर झिंगोरे डुंगरे सखी, डर डर[१०८] दादुर सोर ।
पपीउ[१०९] पिउ पिउ करे सखी, गिगन करे घनघोर रे,
वाध्यो तिहा मन्मथ जोर रे, विरही कु [ल] कठिन कठोर रे,
हियडु न रहे ए कठोर रे ॥२॥

[४२]

वीझलीयाँ झड़[११०] मांडिया[१११] सखी, गिगन[११२] करे घड[११३] डाट रे,
जल थल सवि जल पूरियाँ सखी, वहे न हि कांठा[११४] वाट रे ।
जल थल मरि रुध्या घाट रे, हल करमण वाहे जाट रे,
जल पैठां वसुधा फाट रे ॥३॥

---

१०१ B P गगन । १०२ A घडुकै । १०३ P. मेद । १०४ A. किऊ । १०५ A बले । १०६ A रित । १०७ Not found in AB १०८ B. सर सर । १०९ P बपंयो B. ब्बीसो । ११० B जर । १११ A. लाईयो । ११२ BP. गगन । ११३ A गड । ११४ B काइ बाटरे ।

[४०]

इस अवसर पर वहाँ सुन्दर वर्षा ऋतु आई। गगन में मेघ गर्जन करने करने लगे। जल के परनाले चलने लगे। चतुर्दिग खालों में पानी खलकने लगा। नदी की धाराएँ प्रखरता से प्रवाहित होने लगी। जल पूरित तालाबों की पाल फूटने लगी। मनोहर वर्षा ऋतु आई।

[४१]

पर्वत पर मयूर, झिंगुर (बोलने लगे) दादुर डर-डर शब्द से शोर करने लगे। पपीहा पीयु-पीयु करने लगा, गगन में घनघोर घटाएँ छा गईं। मन्मथ का जोर बढ़ा। विरही लोगों के लिए कठिन और विकट (समस्या) हो गई, (उनका) हृदय स्थिर नहीं रहता।

[४२]

बिजली और झड़ चालू हो गई, बादल गड़गड़ाहट कर रहे हैं, जल और स्थल सभी जलजलाकार हैं, तट का मार्ग बन्द हो गया, तालाबों के घाट जल से अवरुद्ध हो गए जाट किसान हल चलाने लगे, पृथ्वी को फाड़ कर जल प्रविष्ट होने लगा।

[४३]

उदरवृत्ति करवा भणी सखी, हवे कठीयारो काण्ह ।
रज्जु कुहाड़ो करग्रही, रड वडतो गयो रान रे,
नदीया वहे जल[115] असमान रे, वहियाँ ए तरुवर रान रे,
गणताँ[116] कोइ नावे ज्ञान[117] रे ॥४॥

[४४]

कडिया[118] बान्ध्यो कांबलो सखी, पैठो जल भरपूर ।
चोखु चंदन लाकडुं[119] सखी, अन्यो आप हजुर रे,
दीसै अति सदल सनूर रे, भाँजी[120] कीधु[121] चकचूर रे[122]
गंध पहोतो जिहाँ शशि सूर रे[123] ॥५॥

[४५]

भारी वेचण कारणें सखी, आयो भर बाजार ।
काठ कुकाठ भलो बुरो सखी, जाणे नहीं तिलभार रे,
मूरख[124] माही सिरदार रे, नहि विनय[125] विवेक विचार रे,
राखी तिण व्रतनी कार रे ॥६॥

११५ Not found in P ११६ A गिन्ता। ११७ A ग्यान रे। ११८ P कटिये। ११९ \ वा बनो। १२० A भारी। १२१ A वेचन। १२२ A कारणे। १२३ Not found in A १२४ P. मूरखमा। B मूरख माने। १२५ B. वनय।

[४३]

उदर-वृत्ति के निमित्त कान्हड़ कठियारा रस्सी और कुहाड़ा हाथ में लेकर भटकता हुआ वन मे पहुँचा। असाधारण जल-प्रवाह वाली नदियों में वन के वृक्ष प्रवाहित होकर इतने आते थे कि उनकी कोई गिनती नहीं।

[४४]

कमर में अपनी कम्बल को बांध कर कान्हड़ भरपूर जल में प्रविष्ट हो गया। वह एक अच्छा सा सुन्दर हलदार चन्दन-काष्ट टान कर अपनी ओर ले आया। उसने उसे भांग कर चकचूर कर दिया जिससे उसकी सुगन्ध आकाश मंडल में व्याप्त हो गई।

[४५]

वह भारी बेचने के निमित्त भरे बाजार मे आया। उस मूर्ख शिरोमणि को भले-बुरे काठ-कुकाठ का कोई ज्ञान नही था। न उसमें विनय, विवेक विचार ही था फिर भी उसने व्रत की मर्यादा की रक्षा की।

[४६]

इण अवसर तिण महरमें[१२६]सखी, श्रीपति सेठ सुजाण।
मोवन कोडी चारनो सखी, परिग्रह कीध परमाण[१२७]रे[१२८]
श्रीजिनवर पाले आण रे, बारह व्रतधारक जाण रे,
नित्य पोसह करे पच्चक्खान रे[१२९] ॥७॥

[४७]

चउद[१३०]नियम संभार तो सखी, श्रावककुल सिनगार।
ले[१३१] लाहो लखमी[१३२]तणो सखी, जाणे सहु संसार रे,
घर पुत्र कलत्र परिवार रे, इम सफल करे अवतार रे,
थयु धर्म चित्त उजमाल रे[१३३] ॥८॥

[४८]

चंपक चाकर सेठ नो सखी, आयो उण बाजार।
कठीयारा काण्हड़ तणी सखी, भारी लिये तिण वार रे,
हवे[१३४]देइ टका दोइ चार रे, काण्हड़ शिर देई भार रे,
दोनु आया सेठ दुवार रे ॥९॥

---

१२६ A. सहिर मे P सहेर में। १२७ P प्रमाण। १२८ No found in A B. १२९ A. नित पोरसनो पचखान रे। B नीत पोसानो पसखान रे॥ १३० A. चवद है नेम। १३१ P ल्ये। १३२ A लक्ष्मी। १३३ Not found in A B १३४ A. हिव।

[४६]

इस समय उस नगर में श्रीपति सेठ जिनाज्ञा प्रतिपालक, बारह व्रत धारी, पौषध प्रत्याख्यान करने वाला सुज्ञ व्यक्ति था। उसके चार कोटि सुवर्ण मुद्राओ का परिग्रह परिमाण व्रत लिया हुआ था।

[४७]

वह चौदह नियम सँभालने वाला श्रावक कुल शृङ्गार और विश्व विश्रुत था। अपने पुत्र, कलत्र, परिवार के साथ द्रव्य का सद् व्यय करते हुए अपना अवतार (जन्म) सफल करता था उसका चित्त धर्म के द्वारा प्रकाश मान था।

[४८]

सेठ का चम्पक नामक नोकर उसी बाजार मे आया जहाँ कान्हड कठियारा भारी लेकर आया था। उसने दो चार पैसे देकर कान्हड़ के सिर भारी उठा दी और दोनों सेठ के द्वार पर आये।

[४६]

चोखो चंदन बावनो[१३५] सखी, परिमल गंध रसाल ।
गोखें बैठो सेठजी सखी, खबर हुइ तत्काल रे,
चंदन नो गंध रसाल रे, कठीयारै काण्हड़ वाल रे,
जइ नाख्यां चोक विसाल रे ॥१०॥

[५०]

सेठ कहे चंपक प्रते सखी, एह नो मूल कहाय ।
दोय टाका दीधा अछै सखी, जो तुम आवेदाय रे,
कठीयारे घरमें[१३६] जाय रे, हवे सेठ कहे समझाय[१३७] रे,
एह नु मूल लीयो तुम दाय रे[१३८] ॥११॥

[५१]

दे सोनईया पाँच से सखी, सेठने कीधो जुहार ।
तीजो टाले ठलकतो सखी, मीठो राग मल्हार रे,
कहे मानसागर सुविचार रे, काण्हड़ं लह्यो द्रव्य अपार रे,
पामीजे पुन्य प्रकार रे ॥१२॥

॥ दूहा ॥

[५२]

नगर वीचालै नीकल्यो, आयो गणिका वास ।
नट खुट तिहा वसै, हस कर[१३९] कीधी हास ॥१॥

१३५ A. ववनो । १३६ A. घरने । १३७ A. संभाय । १३८ Not found in A.
१३९ P. करि ।

[४६]

उत्तम जाति के बावना चन्दन की सुगन्धित लपटे गवाक्ष मे बैठे हुए सेठ के पास पहुँची। कान्हड़ ने सेठ के विशाल चौक में जाकर भारी गिरायी। चन्दन की सुगन्ध बड़ी अच्छी थी।

[५०]

सेठ ने चम्पक से भारी का मोल पूछा। उसने कहा दो पैसे दिये हैं, यदि आपको पसन्द हो तो कठियारा अपने घर जाय। सेठ ने समझा कर कहा इसका इच्छित मूल्य तुम लो।

[५१]

सेठ ने उसे पाँच सौ सौनैये (एक प्रकार के सिक्के) दिये, उसने सेठ को प्रणाम किया। मीठी मल्हार रागकी यह तीसरी ढाल कवि मानसागर ने सुविचार पूर्ण कही। कान्हड़ ने पुण्य-योग से प्रचुर द्रव्य प्राप्त किया।

•

[५२]

नगर के मध्य में से निकल कर वह गणिका-धाम में आया। वट विट लोग वहाँ रहते थे जिन्होंने हँसते हुए उसकी मजाक उड़ाई।

[५३]

उलगाणो आयो इहा, मनमें महोटी[१४०] खंत[१४१] ।
आयो आँही जानजो, रमिया एम हसंत ॥२॥

[५४]

कठीयारा काण्हड़ कहे, संभल[१४२] सयणाँ बात ।
इण ठोडें जे आवसी, ते रहसी एक रात ॥३॥

[५५]

वेश्या आई विहसती[१४३], वयनें अमी झरत ।
मुख मोडे मटका करे नयणें नेह धरत ॥४॥

॥ ढाल चोथी ॥

॥ नमणी खमनी ने मन गमनी॥[१४४] ए देशी ॥

[५६]

बैठी पीढ़ो मांडी विसाला, रसिया[१४५] उपर मांडे ठाला ।
सिर राखडियाँ अधिक शोभा, माथे भ्रमर भलीपर थोल्या ॥१॥

[५७]

निलवट अधिक विराजे टीको, नयणें काजल सोहे नीको ।
आखंडियाँ मोहे अणीयाली, भमुह[१४६] कबाण भमर परि काली ॥२॥

---

१४० A. मोटी । १४१ A. खत । १४२ A. संभली । १४३ A. विकसती ।
१४४ In B after this we have रमणी सेसो बन वरनी । १४५ AP. रसिया । १४६ B. भ्रँह ।

[५३]

ये मन में बड़ी भारी हौंस लेकर यहाँ सेवा के हेतु आये हैं। रसिये लोग हँसने लगे कि आया है तो निश्चय से यह जानना।

[५४]

कान्हड़ कठियारा ने कहा—मित्रों! मेरी बात सुनो। इस स्थान में जो आवेगा वह एक रात तो रहेगा ही।

[५५]

वचनामृत सुनानेवाली, नेत्रों में स्नेह भर, हाव भाव पूर्वक एक प्रसन्न-मुखी वेश्या आई।

[५६]

बड़े से पीढ़े पर बैठी हुई वेश्या रसिक लोगो पर डोरे डाल रही थी। उसके सिर पर रखड़ी सुशोभित थी मानो (कमल पर) भँवरो का झुण्ड आ उपस्थित हुआ हो!

[५७]

ललाट पर तिलक सुशोभित था, आँखो में काजल की रेख नीकी लगती थी, अणियाली आँखें, धनुप की सी भोहें भ्रमर की तरह श्याम थी।

[५८]

दीप शिखा जिम सोहे नासा, परिमल गंध लिये तिहाँ वासा ।
नासा[१४७] उपर[१४८] सोहे मोती, राति दिवस रहे तिहाँ जोती ॥३॥*

[५६]

बदन अनोपम सारद चंद, जिन जिता[१४९] छै अमीरस कंद ।
अधर प्रवालतणी परे राता, दंत पंत[१५०] विच सोहे खाता ॥४॥

[६०]

सोनानी घड सोहे काण, ऊगनिया सोहे असमान ।
गले सोहे मीति नको हार, मूल्य तणो न वि लाभुं पार ॥५॥

[६१]

बाँहे बहेरखा सोवन चूड़ी, कर कंकण थी[१५१] दीसै रूडी ।
कुच कठिन उचाँ असमान, सोवन कल[स] तणु उपमान ॥६॥

[६२]

मुखमें पानतनी छे बीड़ी, कंचूतणी कस अधिकी भीड़ी ।
सीहा लंकी[१५२] अति सुकुमाल, हंसतणी जिणे जीतीं चाल ॥७॥

[६३]

पाये नेऊर बाजे चंग, चरण कमल अलकतो रंग ।
इण परि सजीया सोल भृङ्गार[१५३], आइ बैठी पोल दुवार ॥८॥

१४७B. नाक। १४८ After that B. has शुभ। १४९ P. जीहा जीत्या। १५० P. पंति। १५१ P. स्त्री। १५२ P. सिंहा ०। १५३ P. शनगार।

* After that one or two folios, containing verses 59 to 81 (of our number), are not found in B.

[५८]

दीप-शिखा सी शोभित नासिका पुष्पों की सुगन्ध—सुवास ले रही थी। नाक पर मोती सुशोभित था जिसकी वहाँ रात-दिन ज्योति रहती थी।

[५६]

शरत् पूर्णिमा के चन्द्र की भाँति मुख-मंडल अनुपम था मानो उस अमृतरस कान्त को जीत लिया हो। प्रवाल की भाँति उसके लाल अधर थे, बीच में दन्त-पंक्ति सुशोभित थी।

[६०]

स्वर्ण-घटित उगणिया कानो मे और गले में बहुमूल्य मुक्ताहार सुशोभित था।

[६१]

बाँहो में बहरखे, हाथों में कंगन और चूड़ियो से सुन्दर लगती है। ऊँचे कठोर कुच स्वर्ण-कलश की उपमा को धारण करते हैं।

[६२]

मुह में पान का बीड़ा है, कंचु खूब कसके बाँधी हुई है। सिह की तरह पतली सुकुमार कटि-प्रदेश है, गति में उसने हंस की चाल को भी जीत लिया है।

[६३]

पाँवो में नूपुर बज रहे है, चरणो पर अलता का रंग है। इस प्रकार सोलह श्रृङ्गार सजी हुई मुख्य द्वार पर आ बैठी।

[६४]

रूपे रंभतणो अवतार, हाथें आप घडी किरतार।
ते देखीने मोहे इंद, आगें उभा नरवर वृंद ॥९॥

[६५]

कामलता तिहा[१५४]सामो[१५५] जेयो, ते देखो काण्हड़मन मोह्यो[१५६]
मुझ पासें सोनईया सार, देइ सफल करुँ अवतार ॥१०॥

[६६]

गोला[१५७]रे कदि हुंती गाय, इम[१५८]चित वीयो काण्हड़ राय।
ले[१५९] सोनईया हाते दीध, सयणाँ हंदा बोलज कीध ॥११॥

[६७]

कामलता हुइ मनगाजि, काम केलिनी मांडी बाड़ी,
तेल सुगन्धा मोहोंघा कीधाँ, सयणें सेती बीड़ा दीधा ॥१२॥

[६८]

चोथी ढाल कही अति चगी, मानसागर कहे नवनव रंगी।
काण्हड़ नु मन थयु उठ रंग, राग केदारो वधते रंग ॥१३॥

॥ दूहा ॥

[६९]

नायक[१६०] तेड़ी नायका, तूरत[१६१] मगाया[१६२] तेल।
चाक पाक काण्हड़ कीयो, वेस्या सुरंगी रेल ॥१॥

१५४ P तियां। १५५ P सहामु जोयु। १५६ P मोहयु। १५७ P गोलां।
१५८ P एम। १५९ L लइ। १६० P. नापित। १६१ P. तुरत। १६२ P. मंगाया।

[६४]

रूप रंग के इस अवतार को मानो विधाता ने अपने हाथ से घड़ा हो। इसे देख कर इन्द्र भी मुग्ध हो जाय और राजा लोग स्वयं (सेवा में) खड़े रहें।

[६५]

कनकलता ने उसके सामने देखा, उसे देख कर कान्हड़ मुग्ध हो गया। (उसने सोचा) मेरे पास सोनैये हैं, देकर अपना जन्म सफल करूँ।

[६६]

गोले के घर में गाय कब थी? ऐसा सोच कान्हड़ ने सोनैये उसके हाथ में दे दिये। ऐसा करके उसने पूर्व कथित सज्जनों के वचन सिद्ध कर दिये।

[६७]

कनकलता ने प्रसन्न होकर कामकेलि की बाजी का उपक्रम किया। महघ्य सुगन्धित तैल अभ्यंगनार्थ प्रस्तुत कर उन सज्जनों को चुनाती दी।

[६८]

मानसागर कहता है कि चौथी ढाल केदारा राग में नये नये रंग से कही, कान्हड़ का मन उल्लसित हो गया।

[६९]

नायिका ने नापित को बुलाया, तेल मंगा कर सुरंगी वेश्या ने कान्हड़ के मालिश आदि करवाये।

[७०]

मन गमता भोजन तणा, कीधा सरस आहार ।
लविंग[१६३] सोपारी एलची, मुछणनो विवहार[१६४] ॥२॥

[७१]

पहेरयाँ[१६५] मुल मुल बसतराँ, शिर पंचरंगी पाघ ।
आगें उभा ऊलगुँ, गावे नव नव राग ॥३॥

[७२]

चउबारया दीवा किया, सखर बनावी सेज ।
वेस्या आधी विहसती, जिनसुँ अधिको हेज ॥४॥

[७३]

पूरो उग्यो पाधरो, पूणिम रे दिन चंद ।
काण्हड़ झांखी जालीयें, आंखे दीठो इंद ॥ ५ ॥

[७४]

आज अछे मुझ आखड़ी, पर नारी परिहार ।
अवसर आए आपणं, कदे न लोपुं कार ॥ ६ ॥

॥ ढाल पाँचमी ॥

॥ बीछी वीयानी ए देशी, रजनी ए देशी[१६६] ॥

[७५]

रज़नी उठो[१६७] एकेलो, हरे [तु]रत बनावी तोतरे लाला ।
मेदान नने मिस एकलो[१६८], गयो आपणो पहेरी पोतरे लाला ॥१॥

१६३ A. लूग । १६४ P. व्यवहार । १६५ A. सखर बनावी सेज । १६६ P. देशी चूनडीनी । १६७ P. उठ्यो । १६८ P काण्हजी ।

[७०]

रुचिकर सरस आहार का भोजन कराके लौंग सुपारी आदि की मनुहार की ।

[७१]

मलमल के वस्त्र पहनकर मस्तक पर पचरंगी पाग (पगड़ी) धारण की । सामने गवैये सेवा में खड़े नाना राग आलाप कर रहे थे ।

[७२]

चारों तरफ दीपक संजोया, सुन्दर शय्या सजाई । अधिक प्रेम दिखाया, प्रफुल्लित हो वेश्या आकर उपस्थित हुई ।

[७३]

पूर्णिमा का दिन होने से उदित हुआ पूर्ण चन्द्र सीधा दिखाई दिया कान्हड़ ने जाली में से झांककर अपने आँखों से चन्द्र दर्शन किया ।

[७४]

आज मुझे परनारी त्याग का नियम है । अवसर पाकर भी अपनी मर्यादा का कदापि लोप नहीं करूँगा ।

[७५]

अब वह रात्रि के समय तुरंत अकेला उठा और मैदान के बहाने अपना वस्त्र पहनकर अकेला ही निकल पड़ा ।

[७६]

धन धन कठीयारो काण्हजी, जिने राखी व्रतनी रेख लाल।
मेली सोनईया पाचसे, वली मूक्यां परनो वेशरे लाला ॥२॥

[७७]

भर बाजार हाटमे, जई[169] सूतो नीद घुमाय रे लाला।
वेस्या जोवे वाटडी, आयो नहि काणडराय रे लाला ॥३॥

[७८]

पोहड[170] घडीने आतरे, पाणि भरि झाडि साहि रे लाला।
उभी जोवे वाटडी, आयो[171] नहि काणड़राय रे लाला ॥४॥

[७९]

आव रानानी पाखती, उभी तिहा करती हॉसरे लाला।
माद दिये मानी[172] करै, विचकरती खराग खामरे लाला ॥५॥

[८०]

दीवो आण दोडी ने, तिन जोयी वेस्या वासरे लाला।
खबर न लाधी काणडी, मूकी गयो धननी रास रे लाला ॥६॥*

[८१]

वेस्या कहे वित पार को, हुन राख नहि तिल भाररे लाला।
खरीय कमाइ स्वेदनी, माहरै तिनसु छै विवहारै रे लाला ॥७॥

१६९ Not in P १७० I पहोर। १७१ P काण्हड न आयो घरमाहि रे लाला।
१७२ P साने।

* After this P h is a verse No 81 which corresponds to our verse No 83

[७६]

कठियारे कान्हजी को धन्य है ! धन्य है ! जिसने अपने व्रत की, मर्यादा की रक्षा की, अपनी पाँच सौ स्वर्णमुद्राएँ और परायी पौशाक भी छोड़ गया।

[७७]

वह बाजार के बीच किसी हाट में जाकर नींद घुराने लगा। इधर कान्हड़ के न आने पर वेश्या मार्ग देख रही थी।

[७८]

घड़ी पहर तक पानी की झारी लिए खड़ी प्रतीक्षा करती रही पर कान्हड़ घर में नहीं आया।

[७९]

आवखाना के निकट न आने पर स्मित हास्यपूर्वक पुकार कर, संकेत और खंखारा आदि करके खड़ी रही।

[८०]

वह दौड़ कर दीपक लाई और समूचा वेश्यावास ढूंढ़ लिया पर कान्हड़जी का कोई पता नही लगा जो धनराशि छोड़ कर चला गया।

[८१]

वेश्या ने कहा—मैं तो पर-द्रव्य लेशमात्र भी नहीं रखूंगी ! मेरे तो अपने पसीने की कमाई लेना ही व्यवहार्य्य है।

[८२]

रात गई रवि उगियो, सहु मिलीया राणो राणरे लाला।
बात जिका काणड़तणी, कहि मांडी चतुर सुजान रे लाला॥८॥

[८३]

गणिका काँई[१७३] परधनतणो, लेवा लीधो छै नीमरे लाला।
खरीय कमाई आपणी, तिनसु नित राँख सीमरे लाला॥६॥

[८४]

वेस्या सहु टोलै मिली, बाली भोली जोवन वेसरे लाला।
घरठी[१७४]बूढो डोकरी, जई भेव्यो नरेस रे लाला॥१०॥

[८५]

कामलता वेस्या घरे, कठीयारो काण्हड नाम रे लाला।
सोनईया देइ पांचसे, मूकी गयो किण्ही कामरे लाला॥११॥

[८६]

सार न पूछी साहिवा, माँसु नवि सीधु सुकाज[१७५] रे लाला।
ए निरमाल लेवा नही, माहरै घरे एहवु राज रे लाला॥१२॥

[८७]

राजन् रूडा राखज्यो, धन द्यु छयु सहुनी साख रे लाला।
ए धन आवै रावलै, ए लोक तणी छै भाख रे लाला॥१३॥

[८८]

पाचमी ढाल सोहमनी, राजा ने दीधो दाम रे लाला।
मानसागर कहैआगलै,हिवकुणकुण[१७६]होसे[१७७]कामरे लाला॥१४॥

१७३ Not found in A १७४ A गरटी। १७५ P काजरे। १७६ A कोण कोण। १७७ A होसा।

[८२]

रात बीती, सूर्योदय हुआ। सब लोग राणो राण मिले। चतुर वेश्या ने कान्हड़ की सारी वार्ता मांड़ कर कही।

[८३]

गणिका ने भी पर द्रव्य ग्रहण न करने का नियम ले रखा है, उसे सदा अपनी खरी कमाई रखने की ही मर्यादा है।

[८४]

तरुणी बाला, और भोली भाली सभी वेश्याओं का समूह एकत्र हुआ। वृद्धाएँ जाकर नगर के राजा से मिलीं।

[८५]

काम-लता वेश्या के घर कान्हड़ नामक कठियारा आया और पाँच सौस्वर्णमुद्राएँ छोड़ कर किसी काम से चला गया।

[८६]

श्रीमान्! उसने न तो सार संभाल हीली, न मेरे से उसका कार्य सिद्ध हुआ। यह द्रव्य मेरे लिए निर्माल्य होने से अग्राह्य है, मेरे घर का यही नियम है।

[८७]

राजन्! यह द्रव्य मै सब की साक्षी से देती हूँ। अच्छी तरह संभालें। लोगों में कहा जाता है कि ऐसा धन राज में आता है।

[८८]

इस पाँचवीं मनोहर ढाल में राजा को द्रव्य दिया गया। मानसागर कहता है कि अब आगे क्या क्या होता है? (सुनें।)

॥ दूहा ॥

[८९]

पूरमे[१७८] पडहो[१७९] बजडाबीयो, ले[१८०] सहु कोई नाम।
कामलता वेस्या घरे, कोण[१८१]मूकी[१८२] गयो दाम ॥१॥

[९०]

गलीया गलीया[१८३]गुजता[१८४], मिलीया[१८५] मानस थोक।
सेरी सेरी[१८६] सभल्यो, कोई न वोले लोक ॥२॥

[९१]

चोहटा[१८७] विच बाजै पडह, ले सहु कोई[१८८] नाम।
काणड कठीयारो कहै, ए तो म्हरा[१८९] दाम ॥३॥

[९२]

आगै उभो आयणै, एह वी भाखै भाख।
ए दमडा छै माहरा ए हनी[१९०] द्युं छयु शाख ॥४॥

[९३]

कठीयाराने[१९१] करग्रहि, आण्यो राय हुजुर।
अधिपति दीठो आवतो, ए तो बडो मजूर ॥५॥

[९४]

राय कहै[१९२] काणड प्रति[१९३], ते जोज्यो किम दाम।
कठीयारो काण्हड कहै, थे सुनज्यो म्रुवा[१९४] साम[१९५] ॥६॥

---

१७८ I पुरमैं। १७९ I पडह। १८० BP लइ। १८१ P कुण। १८२ B मेलि। १८३ I गलियां। १८४ P गुजता। १८५ P मलिया। १८६ I शेरी। १८७ चहुटा। १८८ P कोणा। १८९ P माहारा। १९० P ए० वी०। १९१ I नो। १९२ BP पूछो। १९३ P प्रत्यें। १९४ B मुक्त। १९५ P स्वाम।

[८६]

सब का नाम लेकर नगर में घोषणा करवायी कि काम-लता वेश्या के घर में कौन द्रव्य छोड़ गया ?

[६०]

गली गली में गुंजारव सुनकर मानव समाज एकत्र हुआ। गली गली में सब ने सुना, पर बोला कोई नहीं।

[६१]

बाजार के बीच जब सब का नाम लेकर उद्घोषणा हुई तो कान्हड़ कठियारा ने कहा—"यह द्रव्य मेरा है !"

[६२]

वह समक्ष आकर खड़ा हुआ और कहने लगा—यह द्रव्य मेरा है, मैं इसकी साक्षी देता हूँ।

[६३]

कठियारे का हाथ पकड़ कर उसे राजा के सामने लाया गया। राजा ने उसे आते देख कर सोचा, यह तो बड़ा मजदूर है।

[६४]

राजा ने कान्हड़ से पूछा—तुम ने द्रव्य कैसे जोड़ा ? कान्हड़ कठियारे ने कहा, मेरे स्वामिन् ! सुनिये !

[९५]

वीतक बात कहु सबै, सांभल जो सहु संत।
काण्हड़ कठीयारो कहै, ते दाखु दृष्टंत ॥ ७ ॥

*

॥ ढाल छट्ठी ॥

॥ राग सोरठ ॥ यतनी ए देशी ॥

[९६]

कठीयारें मांडी बात रे, बात रे, भारी बेचुं दिन रे रात।
एक दिवस मुनिवर मलियारे, मलियारे, पातक सहु दूरे टलियाँ॥१॥
॥ त्रु० ॥

[९७]

पातक[१९६] सहु[१९७] दूरे टल्या, सुणि मुनिवरनी वाणी।
चोथा व्रतनी आखडी, मै लीधी हित आणी ॥२॥ढाल॥

[९८]

चित्तमें एक बात विचारी रे, विचारी रे, तजी पूणिम दिन परनारी।
निज नारीसुँ[१९८] नित्य नेहा रे, नेहा रे, पालुँ हुँ व्रतनी रेहा॥३॥
॥ त्रु० ॥

[९९]

इम[१९९] करता दिन केतले[२००], भारी बेची आण।
दोय टका दे ले गयो, श्रीपति सेवक जाण ॥४॥दूहा॥

१९६ B. पातिक। १९७ P सवि। १९८ P. नारीशु। १९९ P. एम। २०० P. केटले।

[६५]

"मैं सारी बीती बात कहता हूँ।" कान्हड़ कठियारा ने कहा, "वह दृष्टान्त प्रस्तुत करता हूँ सभी सत्पुरुष सुनें।"

[६६]

कठियारे ने कहानी प्रारंभ की—मैं दिन रात भारी बेचता हूँ ! एक दिन मुनिराज मिले जिससे मेरे सारे पाप दूर हो गए।

[६७]

मुनिराज की वाणी सुनकर सारे पाप दूर हो गए, हितपूर्वक चतुथ व्रत का नियम ग्रहण किया।

[६८]

मैंने हृदय में एक बात विचार कर पूर्णिमा के दिन परनारी का परिहार किया। स्वस्त्री से स्नेहपूर्वक (खुला रखकर) मैं व्रत की मर्यादा पालन करता हूं !

[६९]

यों कितनेक दिन बाद मैंने भारी लाकर बेची। श्रीपति सेठ का सेवक दो रुपये देकर मुझे ले गया।

[१००]

श्रीपतिनो सेवक एह, भारी ले गयो निज गेह।
बावना चंदननो भारी, श्रीपति मन बात विचारी ॥५॥ढाल॥

[१०१]

बात विचारी तुरत सु, सोनईया सो पंच।
आण दीया एकण समे, कानड़ करी मन खंच ॥६॥दूहा॥

[१०२]

मनमा न करी काइ खंच[२०१], मुझ मिलीयो एहवो संच।
पाच से सोनईया दीधा, तिण सीस चढावी लीधा[२०२]॥७॥ढाल॥

[१०३]

लेह[२०३] घरने संचर्यो, आयो[२०४] वेस्या वास।
नट[२०५] खुट नर तिहा वसे, तिण कीधी मुझ हास ॥८॥दूहा॥

[१०४]

तिहा माहारी[२०६] हासी कीधी, वेस्या मुझसु दृष्ट[२०७] दीधी।
पाचसे सोनईयो दीधा, तीणै खोलै खाली लीधा ॥९॥ढाल॥

[१०५]

सीस चढाई[२०८] तुरत सु, मांडी मुझसु बात।
आवा आओ[२०९] आम घरे, वासो रहो एक रात ॥१०॥दूहा॥

---

२०१ A. मुक्तमा न करी का खंच। २०२ BP. में खोले खाली लीधां। २०३ A. लेई। २०४ A. गयो। २०५ P. नट्ट ०। २०६ P माहरी। २०७ B. दीठ। P दिठ। २०८ BP. सीस चाढावी। २०९ Not found in A.

[१००]

श्रीपति का सेवक भारी के साथ मुझे अपने घर ले गया। श्रीपति सेठने सोचा बावना चंदन की माटी है।

[१०१]

यह सोचकर सेठने एक साथ पांचसौ स्वर्ण मुद्राएँ लाकर तुरंत मुझे दी और मन में कोई संकोच नहीं किया।

[१०२]

(सेठने) मन में किसी प्रकार का संकोच नहीं किया, मुझे इस प्रकार द्रव्य राशि मिली जो पांचसौ सोनैये दिये मैंने सिर चढा के लिए।

[१०३]

मैं (द्रव्य) लेकर घर की ओर चला जब वेश्याओं के वास (गली) में तो वहाँ रहने वाले नटखट पुरुषों ने मेरी हँसी उडाई।

[१०४]

वहाँ मेरी हँसी उड़ाई गई, वेश्या ने मेरी ओर सुदृष्टि की। मैंने पांचसौ सोनैये दिये। उसने अपने अंक में ले लिए।

[१०५]

वेश्याने द्रव्य शिरोधार्य करके मुझ से कहा—हमारे यहाँ पधार कर एक रात निवास करो।

[१०६]

मेडी मोही सेज विछाइ, वेस्या विहसती आई।
पूणिम दिन पूरो चंद, देखी थयो अधिक आनन्द ॥११॥ढाल॥

[१०७]

पूणिम दिन[२०९] परनारीसु छै सु[श्र] व्रतनी कार।
एह न भांजु आखडी, निश्चय ने सुविवहार ॥१२॥दूहा॥

[१०८]

मैदान[२१०] तणो मिस किधो, वेस्या नो हुकमज लीधो।
रजनी हाटे[२११] जई खूतो, वेस्या सेती न वि खूतो ॥१३॥ढाल॥

[१०९]

वेस्यासु खुतो नही, पालै व्रतनी आण।
रात गई रवि उगियो, उदयाचल सिर भाण ॥१४॥दूहा॥

[११०]

उदयाचल उग्यो भाण, करतो ते सफल विहाण।
काण्हड़ कहि बात ताजी, सहु लोक हुआ मन राजी ॥१५॥ढाल॥

[१११]

मन राजी सहुको हुवा, बात कही में आज।
ए सोनईया पाचसे, माहारा छे महाराज ॥१६॥दूहा॥

[११२]

छठी ए ढाल विसाला ला रे[२१२], सुन्ता[२१३] कहे मान रसाला[२१४]।
राग सोरठ यतनी देशी, जानिअ ते खरीय कहे सी ॥१७॥ढाल॥

२१० B. मयदान। २११ B. ठाडे। २१२ Not found in A B. २१३ P. सुणताँ। २१४ P. रसाल।

[१०६]

वेश्या ने मेड़ी में शय्या बिछाई और वह उल्लास पूर्वक आई। पूर्णिमा के पूर्ण चन्द्र को देख कर अधिक आनन्द हुआ।

[१०७]

पूर्णिमा के दिन पर नारी सेवन की मुझे व्रत-मर्यादा है। मैं निश्चय पूर्वक यह नियम कभी भी नहीं भंग करूँगा।

[१०८]

मैदान जाने के बहाने वेश्या की आज्ञा लेकर मैं निकला और रात भर हाट में जाकर सो गया वेश्या के साथ सम्पर्क नहीं किया।

[१०९]

वेश्या-संग से बचकर व्रत की मर्यादा पालन की। रात्रि बीती, उदयाचल पर सूर्योदय हुआ।

[११०]

उदयाचल मैं प्रभात को सफल करता हुआ सूर्य उदय हुआ। कान्हड़ ने ताजी बात कही जिसे सुन कर सब प्रसन्न हो गए।

[१११]

महाराज! ये ५०० सोनेये मेरे हैं। मैंने आज राम कहानी कही, सब के मन प्रसन्न हुए।

[११२]

सोरठ—यतनी देशी राग मैं यह रसाल ढाल कवि मान ने कही जो राग का ज्ञाता है, वह सही सही कहेगा।

॥ दूहा ॥

॥ सोरठी ॥

[११३]

राजी हुवो राय, लोक सहु राजी हुआँ।
श्रीपति तेडण जाय, अधिपति केरा आदमी ॥ १ ॥

[११४]

आए[२१५] अधिपति पास, श्रीपति सेठ इश्यो[२१६] कहे।
मैं दीधी घनरास, इण कठीयारा काण्हने ॥ २ ॥

[११५]

उ कठीयारो काण्ह, ल्यायो[२१७] चंदन बावनो[२१८]।
दोय टाका उपमान, दीधा चाकर माहरे ॥ ३ ॥

[११६]

मैं विगतावी बात एतो चन्दन बावनो।
एहनुँ मूल्य आख्यात, दीया सोनईया[२१९] पाचसे ॥४॥

[११७]

छे मुझ गुरुणी आण, अधिको न लीयुँ पारको[२२०]।
ए उत्तम अहिणाण[२२१], आटा लूण तिसी परै ॥५॥

[११८]

अधिपति भाखै आम, ए सोनईया[२२२] पाचसे।
को नहीं माहारे काम, सांभलज्यो सहुको सभा ॥६॥

---

२१५ P. आवि। २१६ A. इसो। २१७ P. लायो। २१८ A. बावना।
२१९ P. सोनैया। २२० P. पारकुं। २२१ B. अधिनाण, P. अहिनाण।
२२२ P. सोनैया।

[११३]

राजा प्रसन्न हुआ, लोक सब प्रसन्न हुये। राज पुरुष श्रीपति सेठ को बुलाने गए।

[११४]

श्रीपति सेठ ने राजा से आकर कहा—मैंने कान्ह कठियारे को धन राशि दी है।

[११५]

यह कान्ह कठियारा बावन्ना चंदन लेकर आया। मेरे नौकर ने उसे दो टका अनुमान दिए।

[११६]

मैंने कहा—यह बावना चंदन है। मूल्यवान होने से मैंने पांचसौ सोनैये दे दिए।

[११७]

मेरे गुरु का आज्ञा है कि अधिक पर-द्रव्य न लूँ! यह उत्तम अधिज्ञान है कि आटा मे नमक जितना (लाभ) किया जाय।

[११८]

राजा ने कहा ये पांचसौ सोनैये हैं, मुझे इनसे कोई प्रयोजन नही सारी सभा के लोग सुनें।

[११९]

सोनईया सो पंच, काण्हड़ने दीधा परा।
एहनो एही संच, खरा कमाया काण्हड़ा ॥ ७ ॥

★

॥ ढाल सातमी ॥

॥ मेरो मन ला गोप्या राम्या [म] सुरे लाल ॥ ए देशी[२२३] ॥

[१२०]

इण अवसर आया[२२४] तिहा रे लाल, केवल धर अणगार।
सुखकारी रे।
राजा पूछै रंगसु रे लाल, कहो मुझ एक विचार ॥ १ ॥

[१२१]

सील[२२५] तणी महिमा सुणरे[२२६] लाल, श्रीपति सेठ वसै इहाँ
रे लाल, काम लता तिहा जाण।
सुसील कठीयारो काणड़ अछै रे लाल, लेखे मुझणै आण ॥२॥सुख॥

[१२२]

मुनिवर आगल भाखीयो रे लाल, च्यारे[२२७] तणो अवदात।
च्यारा माहि अधिको किसो रे लाल, महिपति पूछै बात॥३॥सुख॥

[१२३]

च्यारे ए महिमा निलो रे लाल, च्यारे ए चतुर सुजाण।
इणमें अधिको काण्हड़ रे लाल, राखी व्रतनी काण[२२८]॥४॥सुख॥

२२३ BP. मेरो प्यारोरे। ए देशी। २२४ P. आव्या। २२५ P. शील।
२२६ P. सुणो। २२७ P. चार। २२८ B. कार।

[११६]

पाँचसौ स्वर्ण मुद्राएँ कान्हड़ को दे डाली। ये खरी कमाई का संचय इसी का है।

[१२०]

इसी अवसर पर वहाँ केवलज्ञानी श्रमण पधारे। राजाने प्रेम पूर्वक पूछा—मुझे एक बात बतलाईये।

[१२१]

शील की महिमा सुनो !

श्रीपति सेठ यहाँ निवास करता है, काम लता और कान्हड़ कठियारा भी है, मैं भी इसी हिसाब में हू।

[१२२]

मुनिराज के समक्ष चारों के गुण विशेष बतलाये। राजा ने यह पूछा कि चारों में कौन विशिष्ट व्यक्ति है।

[१२३]

ये चारों महिमाशाली हैं, चतुर सुज्ञानी हैं, इनमें अधिक कान्हड़ है जिसने व्रत की मर्यादा रखी।

[१२४]

मूक्यो[२२९] सोनईया[२३०] पाचसै रे लाल, मूक्यो गणिका भोग ।
धन कठीयारो काणजी रे लाल, सहू वै सरावै लोग ॥५॥सुख॥

[१२५]

धन धन लोक कहै सहू[२३१] रे लाल, धन [धन] कहै नगर नरेस ।
सील तणी जिन आखड़ी रे लाल, पाली जोवन[२३२] वेस[२३३] ॥६॥
॥सुख॥

[१२६]

तीरथ शत्रुंजो[२३४] वडो रे लाल, मन्त्र वडो नवकार ।
नदीया माहि मंदाकिनी रे लाल, व्रत माहि सील विचार॥७॥सुख॥

[१२७]

सील तणी महिमा सुणी रे लाल, हरख्या राणो राण ।
धन धन जै सेवै सदा रे लाल, व्रतमाहि अधिको जाण[२३५]॥८॥सुख॥

[१२८]

इण अवसर अवनीपति रे लाल, थाप्यो निज परधान ।
राज काज सहू सुपीयो रे लाल, दीधो विमणो[२३६] आमान[२३७]॥९॥
॥सुख॥

[१२९]

राज भार धुरंधरु रे लाल, मन्त्र में सिरताज[२३८] ।
मन मोह्यो महाराजणो रे लाल, वाधी विमनी लाज[२३९]॥१०॥
॥सुख॥

२२९ P मुक्यो । २३० P सोनैया । २३१ P काण्हड़ । २३२ P यौवन । २३३ P वेश । २३४ P शेत्रजो । २३५ BP ते लहे सुख नीरवाण । २३६ BP षमणुँ । २३७ BP मान । २३८ P नवकार । B. लाज वधारि सामसँ । २३९ B. माम ।

[१२४]

पाँचसौ सोनैये छोड़े, गणिका का भोग छोड़ा। सभी लोग प्रशंसा करने लगे कि कठियारा कान्हजी धन्य है।

[१२५]

लोग सब धन्य-धन्य कहने लगे, नगरी का राजा भी धन्य-धन्य कहने लगा, जिसने कि तरुण वय में शीलव्रत का नियम पालन किया।

[१२६]

तीर्थों मे शत्रुञ्जय बड़ा है, मंत्रों में नवकार बड़ा है, नदियों में मंदाकिनी और व्रतो में शीलव्रत (बड़ा है)।

[१२७]

शीलव्रत की महिमा सुन कर सभी लोग हर्षित हुए। धन्य है! जो व्रतो में प्रधान (शील) का सेवन करते हैं [वे निर्वाण को पाते हैं]।

[१२८]

इस अवसर पर राजा ने (कान्हड़ को) अपने प्रधान पद पर स्थापित किया। सारा राज्य-कार्य सौंप कर उसे दुगुना सन्मानित किया।

[१२९]

राज्य भार धुरंधर और मंत्रियों में सरताज हो कर उसने महाराजा का मन मुग्ध कर लिया, उसकी दुगुनी इज्जत बढ़ी।

[१३०]

पाच[२४०] विषय सुख भोगवै रे लाल, भोगवै भोग रसाल।
ले लाहो लखमीतणो रे लाल, टालै कुमति जंजाल ॥११॥सुख॥

[१३१]

सातमी ढाल सोहमणी रे लाल, एम कहै कवि मान।
सीलतणा परभाव थी रे लाल, काण्हड़ थयो परधान ॥१२॥सुख॥

॥ दूहा ॥

[१३२]

हवै[२४१] काणड़ सदगुरु कने, सीखे समकित भेद।
सुगुरु सुदेव सुधर्मसु, राखे सदा उमेद ॥ १ ॥

[१३३]

श्रावकना व्रत आदर्या, पालै निरतिचार।
सेव करै अरिहंतनी, जाप जपै नवकार ॥ २ ॥

[१३४]

दान सील तप भावना, सिवपुर मारग च्यार।
आराधै अति भावसु, जिम पामै भवपार ॥ ३ ॥

★

२४० BP. पंच। २४१ A. हिवै।

[१३०]

पंचेन्द्रिय के विषय सुख भोगते हुए सरस भोग भोगने लगे। कुमति जंजाल को काटकर लक्ष्मी (के सद्-व्यय) का लाभ लेने लगा।

[१३१]

शील के प्रभाव से कान्हड़ प्रधान मंत्री हो गया। इस प्रकार यह सुहावनी सातवीं ढाल कवि मान कहता है।

[१३२]

अब कान्हड़ ने सन्दूक के पास समकित के भेद ज्ञात किये। सुदेव सुगुरू और सद्धर्म के प्रति सर्वथा श्रद्धाशील हो गया।

[१३३]

वह श्रावक के व्रत स्वीकार कर निरतिचार पालन करता था। अरिहंत की सेवा और नवकार का जाप करता था।

[१३४]

दान शील तप और भाव ये चारो मोक्ष के मार्ग है। इन्हें अति शुद्ध भाव से आराधन करने लगा जिससे भवसागर को पार किया जाय।

॥ ढाल आठमी ॥

॥ नणदलनी । ए देशी[२४२] ॥

[१३५]

इण अवसर आया इहाँ, धर्मघोष अणगार।
काणड़ दिख्या आदरै, छांडी धन परिवार ॥ १ ॥

[१३६]

धन धन सील सदा भलो[२४३], जे सेवै नरनार।
इण भव सुख संपद मिलै, परभव सुगति[२४४] दातार ॥२॥

[१३७]

पंच महाव्रत उचरै[२४५], पांचे ई मेरु समान।
छकायनी रख्या करै, धन काण्हड़ परधान ॥३॥

[१३८]

पाँच समिति सेवै सदा, तीन गुप्ति[२४६] धरै अंग।
अंग इग्यार भण्या सहु, वलि बारहे उपंग ॥४॥

[१३९]

तप किरीयानो खप करै, ले मुनि सुध[२४७] आहार।
भमर[२४८] तणी परि बहु भमे, चालै खंडा धार ॥५॥

[१४०]

बावीस परिसह झीपतो[२४९], करतो करमनी[२५०] हाण।
दशविध[२५१] जती[२५२] धर्मआचरे, जीवीय[२५३] मरण समान।६।

---

२४२ BP. देशी मधुकरनी। २४३ P. भलुँ। २४४ A. सुपगत, B. सुगत। २४५ P. उच्चरै। २४६ P. गुपति। २४७ P. शुद्ध। २४८ P. भ्रमर। २४९ B. जितिया। २५० P. कर्मनी। २५१ B. दसवध। २५२ BP. यति। २५३ P. जीवित।

[१३५]

धर्मघोष अणगार के यहाँ पधारने का सुअवसर पाकर कान्हड़ ने धन और परिवार को छोड़कर दीक्षा स्वीकार कर ली।

[१३६]

इस भव में सुख संपदा और परभव में मुक्ति का दायक शीलव्रत सदा उत्तम है। जो नर, नारी इसका सेवन करते हैं, वे धन्य हैं! धन्य हैं!

[१३७]

पंचमेरु के समान पंच महाव्रतों का उच्चारण कर छः काय की रक्षा करनेवाला कान्हड़ प्रधान धन्य है।

[१३८]

पाँच समिति का सेवन कर सदा तीन गुप्तियों को अंग में धारण करता है एवं ग्यारह अंग और बारह उपांगों का अध्ययन करता है।

[१३९]

वह मुनि तप किरिया का खप करता हुआ भ्रमर की तरह खूब भ्रमण कर शुद्ध आहार लेता है। उसका चारित्र असिधार की भाँति कठिन है।

[१४०]

बाईस परिसह को जीतकर कर्मों का क्षय करता है। दशविध यति धर्म का पालन करता है। जीवन और मृत्यु के प्रति वह समभावी है।

[१४१]

क्रोध मान माया तजी, तजीयो सघलो लोभ।
चारित्र पाल निरमलौ, वाधै जगमें शोभ ॥७॥

[१४२]

खिमा[२५४] खड़ग करि[२५५] साहियो, पहरी सील सनाह[२५६]।
महियल विचरै एकलो, कोई नहीं परवाह ॥८॥

[१४३]

कर्म शत्रु जीपण[२५७] भणी, जानै सादूलो सीह।
अप्रमत[२५८] भारंड परै, कोइ न आणै बीह ॥ ९ ॥

[१४४]

पंच तीरथ यात्रा करि, निरमल कीधो गात्र।
बारह भावी भावना, मुनिवर चारित्र पात्र ॥ १० ॥

[१४५]

पाप आलोया आपणा, सदगुरु केरी साख।
सयल जीव खमाविया, जे चोराशी लाख ॥ ११ ॥

[१४६]

अंत समय जानी करि, करि अणसण पच्चक्खान।
देवलोकें थया देवता, पहिले कल्पें जाण ॥ १२ ॥

[१४७]

अष्ट कर्मनो क्षय करी, लहि मानव अवतार।
मोक्ष तणा फल पामसी, धन काणड़[२५९] अणगार ॥ १३ ॥

---

२५४ P. क्षमा। २५५ P. कर। २५६ P. सन्नाह। २५७ P. झीपण। २५८ P. अप्रमत्त। २५९ P. काण्हड़।

[१४१]

क्रोध, मान, माया और लोभ का सर्वदा त्याग कर निर्मल चारित्र पालता है जिससे उसकी जगत में शोभा बढ़ती है।

[१४२]

शील रूपी वस्तर पहनकर क्षमा खड्ग हाथ में धारण कर वह अकेला भूमंडल में बेपर्वाह विचरण करता है।

[१४३]

कर्म-शत्रुओं को जीतने में मानों वह शार्दूल सिंह है और भारण्ड पक्षी की तरह अप्रमत्त और निर्भय है !

[१४४]

उस चारित्र पात्र मुनि ने पंच तीर्थों की यात्रा और बारह भावना भाकर अपने देह को पवित्र किया।

[१४५]

सद्गुरु की साक्षी से उसने अपने पापों की आलोचना की। चौरासी लक्ष जीवायोनि के समस्त जीवो से क्षमापना की।

[१४६]

अपना अन्त समय जान कर उन्होंने अनसन प्रत्याख्यान किया और कालधर्म पाकर प्रथम कल्प देवलोक में देव हुए।

[१४७]

कान्हड़ अणगार धन्य है जो वहाँ से मानव अवतार लेकर अष्ट कर्म का सर्वथा क्षय कर मोक्षफल प्राप्त करेगा !

सरस ढाल ए आठमी, साधुतणै [२६०] आचार।
मानसागर [२६१] कहै संपदा, जे सेवै नर नार॥ १४ ॥

॥ ढाल नवमी ॥

॥ बाडी फूली अति भली, मन भमरा रे, ए देशी ॥

[१४९]

काण्हड़ साधु शिरोमणि, मन भमरा रे।
लीधो [२६२] सुर अवतार, लाल मन भमरा रे॥
सीलतणा परभाव थी, मन भमरा रे।
लाधी ऋद्धि अपार, लाल मन भमरा रे ॥ १ ॥

[१५०]

सीलै सुर सानिध [२६३] करै, मन भमरा रे।
सीलै पामे राज, लाल मन भमरा रे ॥
सीलै संपत संपजे, मन भमरा रे।
सीझै वंछित काज, लाल मन भमरा रे ॥ २ ॥

[१५१]

डाइन साइन व्यंतरी, मन भमरा रे।
भूत प्रेत वेताल, लाल मन भमरा रे ॥
सीलतणा परभाव थी, मन भमरा रे।
आय [२६४] नमे ततकाल, लाल मन भमरा रे ॥ ३ ॥

---

२६० P. साधुतणो। २६१ P. has only "मान। २६२ P. लाधो। २६३ सान्निध्य। २६४ P. आवी।

[१४८]

साधु के आचारों से सम्बन्धित यह आठवीं सरस ढाल हुई। कवि मानसागर कहता है कि जो नर-नारी सेवन करते हैं, वे आत्म-संपदा पाते हैं।

[१४६]

हे मन भ्रमर ! साधु शिरोमणि कान्हड़ ने शील के प्रभाव से देवलोक में अवतार लिया और अपार समृद्धि प्राप्त की।

[१५०]

शील से देवता सानिध्य करते हैं, शील से राज्य प्राप्त होता है ! शील से सम्पत्ति मिलती है और वांछित कार्य सिद्ध होता है।

[१५१]

डाइन, शाकिनी, व्यन्तरी, भूत, प्रेत, बैताल आदि शील के प्रभाव से तत्काल आकर नमन—सेवा करते है।

[१५२]

सूली सिंहासन थयो[२६५], मन भमरा रे।
सेठ सुदर्शन जोय, लाल मन भमरा रे॥
शीलतणा परभाव थी, मन भमरा रे।
आय नमें सहू कोई[२६६], लाल मन भमरा रे ॥४॥

[१५३]

काण्हड़ साधुतणि परे, मन भमरा रे।
भवीयण पाली सील, लाल मन भमरा रे॥
इणभव सुख संपद मिलै, मन भमरा रे।
परभव इधकी[२६७] लील, लाल मन भमरा रे ॥५॥

[१५४]

नगर भलो[२६८] पद्मावती, मन भमरा रे।
मरुधर देश मझार, लाल मन भमरा रे॥
धर्मनाथ परसाद थी, मन भमरा रे।
पूजा सतर[२६९] प्रकार, लाल मन भमरा रे ॥६॥

[१५५]

वसै वडा विवहारीया[२७०], मन भमरा रे।
धनकर[२७१] धनद समान, लाल मन भमरा रे॥
रुयागी त्यागी बहुगुणी[२७२], मन भमरा रे।
दे षट् दरशन[२७३] दान, लाल मन भमरा रे ॥७॥

---

२६५ P थइ। २६६ P राण वेताउल दीय। २६७ P. अधिक। २६८ P. भलँ। २६९ P. सत्तर। २७० P. व्यवहारीया। २७१ P. करि। २७२ A. निष्कलंकी। २७३ P. दरिसन।

[१५२]

शील के प्रभाव से देखो तो सही, सुदर्शन सेठ के शूली का सिंहासन हो गया और सब कोई आकर नमस्कार करने लगे।

[१५३]

कान्हड़ साधु की भाँति हे भव्यजन! शील पालो जिससे इस भव में सुख-सपदा व परभव में भी अधिकाधिक लीला लहर होती है।

[१५४]

मरुधर देश में पद्मावती नगर सुन्दर है। जहाँ सतरह प्रकारी पूजा होती है, ऐसा धर्मनाथ का प्रासाद है।

[१५५]

जहाँ बड़े-बड़े कुबेर जैसे धनाढ्य व्यापारी रहते हैं, जो वीर, त्यागी (दानी) और बहुगुण सपन्न हैं, षट दर्शन को दान देते हैं।

[१५६]

सतरै सैतालै समे [२७४], मन भमरा रे।
तिहाँ कीधो चोमास [२७५], लाल मन भमरा रे ॥
सद्गुरुना प्रसाद [२७६] थी, मन भमरा रे।
पूगी मननी आम, लाल मन भमरा रे ॥८॥

[१५७]

श्रीतपगच्छ [२७७] गुरु राजीयो, मन भमरा रे ।
श्री विजयप्रभसूरिंद, लाल मन भमरा रे ॥
तसगछ गगन दिवाकरु, मन भमरा रे।
श्रीविजयरतन मुनिंद, लाल मन भमरा रे ॥६॥

[१५८]

तसगच्छमें [२७७] महिमा निलो, मन भमग रे।
श्रीविजय मागर उवझाय [२७८], लाल मन भमरा रे ॥
ताम मीम [२७९] मोभाकरु, मन भमरा रे।
जीतसागर गणिराय [२८०], लाल मन भमरा रे ॥१०॥

[१५६]

मानसागर सुख संपदा, मन भमरा रे।
जीतसागर गणि सीस [२८१], लाल मन भमरा रे ॥
साधुतणा गुण गावताँ, मन भमरा रे।
पूगी मनह जगीस, लाल मन भमरा रे ॥११॥

२७४ P. सतरशें छेताली समे। २७५ P चउमास। २७६ P. परसाद थी। २७७ P. गछ। २७८ P उवज्झाय। २७९ P शिष्य। २८० AB गणराय। २८१ P शिष्य।

[१५६]

सद्‌गुरु की कृपा से सं० १७४७ में वहाँ चातुर्मास किया, मन की आशा पूर्ण हुई।

[१५७]

श्रीतप गच्छ के अधिपति गुरु श्री विजयप्रभसूरि हुए। उनके गच्छ रूपी गगन के मार्त्तण्ड श्री विजयरत्नसूरि है।

[१५८]

उसी गच्छ मे महिमाशाली उपाध्याय विजयसागर जिनके शिष्य जीतसागर गणि शोभाकारी हे।

[१५९]

जीतसागर गणि का शिष्य मानसागर कहता है कि सुख-सपत्ति प्राप्त होती है ऐसे साधु के गुण गाते हुए, मन की इच्छा पूर्ण हुई।

[१६०]

दिगंबट कथाकोस थीं, मन भमरा रे ।
रचियो ए अधिकार, लाल मन भमरा रें ॥
ऊछो अधिको भाखीयो, मन भमरा रे ।
मिच्छा-दुक्कड़ कार, लाल मन भमरा रे ॥१२॥

[१६१]

नवमी ढाल सोहामणी, मन भमरा रे ।
गोड़ी राग सुरंग, लाल मन भमरा रे ॥
मानसागर कहै सांभलो, मन भमरा रे ।
दिन दिन वधते रंग, लाल मन भमरा रे ॥१३॥

॥ इति सील विषये काण्हड़ कठीयारा री चौपई सम्पूर्ण[२८२] ॥

★

२८२ B श्रीसील विषये काण्हड़ कठियार री चउपई संपूर्ण। लिखण्ड श्रील शंकर मध्ये सं० १८४७ मिता जैत्र। P इति सील विषयक मानसागर गणि विरचित काण्हड़ कठियारानो रास समाप्त।

[१६०]

यह अधिकार दिगंबरीय कथा-कोश से लेकर रचा गया है। यदि कुछ कम बेश कहा हो तो वे दुष्कृत्य मिथ्या हों।

[१६१]

सुरंगी गौड़ी राग में यह सुहावनी नौवीं ढाल दिनोंदिन बढ़ते प्रेम-पूर्वक सुनो ! ऐसा मानसागर कहता है।

शील विषयक कान्हड़ कठीयारा की चौपई पूर्ण हुई।

★

APPENDIX

विक्रमादित्य सुत विक्रमसेन चौ० स० १७२४ कातिक मास कुडे (कुवर नयर) में

॥ दूहा ॥

आदि —सुखदाता संखेश्वरो, पूरम (ण) परम उल्लास।
सानिध करिज्यो साहिबा, अधिक फले ज्य आस ॥१॥

सारदचद समोवडे, वचन अनोपम जास।
सा सारद सुप्रसन्न हुइ, द्यौ मुझ वचन विलास ॥२॥

चरण कमल सद्गुरु तणा, हुं सेवु हित आनि।
कीडी थी कुजर करै, ते समवड को जाणि ॥३॥

गुरु बिनु ज्ञान न सपजै, मूरख अन्ध समान।
हृदय कमल में हितकरण, प्रगम्यो अभिनव भान ॥४॥

सरस वचन सरसति दियों ऊठि उठि रे ऊठि।
गुण वर्णवा गुरुवा तणा, हुं तुझ पूरिस पूठि ॥५॥

दान शील तप भावना, चारे जग में सार।
सरिखा छै तौ पणि इहाँ, दान तणौ अधिकार ॥६॥

ढाल ५१

अन्त—ढाल एकावनमी भणी ए, दान तणो अधिकार।
मानसागर कवि दान थी ए, पामो पामो सुख अपार ॥११॥

ढाल ५वृ वी राग—धण्यासी, शालिभद्र धन्नँ ऋषराया, एहनी

दान तणा फल अधिक दिखाया, भवियण नें चितलाया जी।
सांभलि संघ सहु सुख पाया, दान तणा दिल आया जी॥१॥
विक्रमसेण तणा गुण गाया, अधिक अधिक फल पाया जी।
दानकरण जगि नाम कहाया, परिहरि क्रोध कषाया जी॥२॥
नामइ पातिक पूर पलाया, सुख सम्पति थिर पाया जी।
मात पिता धन ए सुत जाया, सेवइ सुरनर राया जी॥३॥
सतर सइं चउवीसइं, जांण, काति (मृगशिर) मास बखाण जी।
कुड़इं नगर रह्या गुण खाणे, ग्रन्थ चड्यो परिमाणे जी॥४॥
तप गच्छपति विजयदेव सुरिंदा, दीपइ तेज दिणंदा जो।
तस पट श्री विजयप्रभ मुणिंदा, प्रतपो जां रयिचंदा जी॥५॥
तस गछ पाठक माहि पुरन्दर, श्री विद्यासागर गुण सुन्दर जी।
तस सीस सहजसागर गुण मंदिर, सेवइ सुरनर भूधर जी॥६॥
तस पट वाचक बड़ वयरागी, सुन्दर रूप सोभागी जी।
श्री जिन (जय) सागर जिनगुणरागी, महियल महिमा जागो जी॥७॥
नामे लहियै अधिक जगीस, गुण करि बिसवा बीस जीं।
तस पाटे (सीस) जीतसागर गणि ईस, जीवो कोड़ि वरीस जो॥८॥
तस सीस मानसागर मतिसारइं, भवियण नइं हितकारे जी।
रास रच्यो मे पर उपगारे, भणता जग जयकारइ जी॥९॥
थिर रहिज्यो ए ग्रन्थ विचारी, ज्यां लगि धूरी तारी जी।
कंठ करी गास्यै नरनारी, सांभलता शुखकारी जी॥१०॥
विक्रम चरित जै चउपइ डोही, ग्रन्थ रच्यो मइं जोई जी।
अधिको ओछो भाख्यो सोइ, मिच्छादुकड़ होई जी॥११॥
भाव करी ने जे नर भण से, ते शिव - रवणी वरिस्ये जी।
ए संबंध सदा संभलस्यै, तास मनोरथ फलस्यै जी॥१२॥
ढाल बावन (पचावन) मी जे मैं गाई, मानसागर सुखदाई जी।
दिन दिन चढ़ते तेज सवाई, दिन दिन दोलति थाई जो॥१३॥

इति श्रीविक्रमादित्य सुत विक्रमसेन नरेन्द्रस्य चतुष्पदी सम्पूर्णा॥